राजस्थान में राजनैतिक जन-जागरण

लेखक

डा० के० एस० सक्सेना
राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर—4

शिक्षा तथा युवक-सेवा मन्त्रालय, भारत सरकार की
विश्वविद्यालय ग्रन्थ योजना के अन्तर्गत राजस्थान
हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित :

प्रथम संस्करण—१९७२

मूल्य ७.००

मुद्रक—
प्रतिमा प्रिन्टर्स
पुलिस मेमोरियल
जयपुर—४

विषय-सूची

प्रस्तावना

भारतीय भाषाओं को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने की राष्ट्रीय नीति को शीघ्र क्रियान्वित करने के लिए सन् १९६८ में भारत सरकार ने एक बृहद् योजना का सूत्रपात किया था जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना कर उनके माध्यम से विश्वविद्यालय शिक्षा-स्तर पर विभिन्न विषयों में महत्वपूर्ण एवं उपयोगी पुस्तकों के मौलिक लेखन और अन्य भाषाओं से अनुवाद कराने का कार्यक्रम स्वीकृत हुआ था। भारत सरकार के शिक्षा एवं युवक सेवा मन्त्रालय ने चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इसके लिए शत प्रतिशत अनुदान स्वीकार किया। राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी की स्थापना भी इसी उद्देश्य की पूर्ति एवं योजना को क्रियान्वित करने के लिए की गई है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'राजस्थान में राजनैतिक जन-जागरण" का प्रकाशन भी इसी योजना के अन्तर्गत हुआ है।

राजस्थान की भूमि को सदियों से वीर प्रसूता भूमि बनने का सौभाग्य मिलता रहा है। यहां के वीरों ने अपने आदर्शों एवं स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण न्यौछावर किए हैं। अंग्रेजों से पूर्व अरब, तुर्क एवं मुगल बादशाहों से लोहा लेने वाले उदयपुर एवं जोधपुर के राजघरानों का नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से अंकित है। जब अंग्रेज भारत के अधिपति बन गए तब उन्हें भी हमारे देश से निष्कासित करने में भारत के अन्य प्रान्तों के समान ही राजस्थान के स्वतन्त्रता-सेनानियों ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। लेकिन राजस्थान के सेनानियों के लिए एक साथ दो शक्तियों से मुकाबला करना होता था उनमें प्रथम रियासतों के शासक एवं दूसरे अंग्रेज। इतना होते हुए भी राजस्थान में पूर्ण रूप से राजनैतिक चेतना जागृत हुई, परिणाम-

प्रस्तावना

स्वरूप १५ अगस्त, १९४७ को स्वतन्त्रता प्राप्ति के अवसर पर राजस्थान की देशी रियासतें भी भारतीय संघ में विलीन होकर भारत का एक अभिन्न अंग बन गई।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक डॉ॰ कृष्णस्वरूप सक्सेना ने इस ग्रन्थ को राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली एवं राजकीय संग्रहालय बीकानेर तथा अन्य प्रामाणिक सामग्री के आधार पर तैयार किया है। हमें विश्वास है कि यह ग्रन्थ अध्यापकों एवं विद्यार्थियों के अतिरिक्त जन-साधारण के लिए भी उपयोगी होगा।

नारायणसिंह मसूदा
अध्यक्ष, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
एवं
शिक्षा मंत्री, राजस्थान, जयपुर।

प्राक्कथन

स्वतन्त्रता उपहार के रूप में प्राप्त नहीं होती, वह त्याग और बलिदान चाहती है। आदिकाल से ही राजस्थान का इतिहास त्याग, बलिदान और वीरता की कहानी रहा है जहाँ मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देना एक परम्परा रही है। विशेषत: (उदयपुर) और मारवाड़ (जोधपुर) द्वारा अरब, तुर्क, मुगल और बाद में अंग्रेजों के विरुद्ध जो लोहा लिया गया वह निश्चय ही राजस्थान की अन्य रियासतों व जनता के लिए युगों २ तक प्रेरणा प्रदान करता रहा।

भारत के अन्य प्रान्तों के समान ही राजस्थान की जनता ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से योगदान दिया था, अत: जब ब्रिटिश भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन की वेगवती धारा बही तो राजस्थान भी अपने को अछूता न रख सका। परन्तु राजस्थान की जनता को अपने अधिकारों की रक्षा और स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए दोहरा संघर्ष करना पड़ा। प्रथमत: देशी रियासतों के निरंकुश राजाओं और जमींदारों के विरुद्ध जिनके अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं था और दूसरे ब्रिटेन के विरुद्ध जिसका इन शासकों पर वरदहस्त था। अनन्त त्याग, बलिदान और जन-जागरण के फल-स्वरूप अन्य प्रान्तों के समान ही राजस्थान की देशी रियासतों में भी 'लोकप्रिय एवं उत्तरदायी सरकारें' पदारूढ़ हुईं और जब १५ अगस्त, १९४७ को ऊषा की प्रथम किरण ने भारत के भाल पर स्वतन्त्रता का तिलक दिया तो राजस्थान की देशी रियासतें भी भारतीय संघ में विलीन होकर भारत का एक अभिन्न अंग बन गईं।

प्रस्तुत पुस्तक में १८५७ की क्रान्ति से १९४७ तक राजस्थान में हुए

प्राक्कथन

राजनैतिक आन्दोलन एवं राजनैतिक जन जागरण की विवेचना की गई है। यह प्रथम अवसर है जब कि १८५७ से १९४७ तक के राजस्थान मे राजनैतिक जन-जागरण के इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। आशा है राष्ट्रीय जन-जागरण एवं आन्दोलन के इतिहास में रुचि रखने वाले विद्वानों, युवाओं एवं विद्यार्थियो के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

मैं राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी का आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक को प्रकाशनार्थ स्वीकार किया। मैं श्री यशदेव शल्य, कार्यवाहक निदेशक का भी धन्यवाद करना चाहूंगा जिनके प्रयत्नो से ही पुस्तक का प्रकाशन शीघ्र हो पाया है।

अजमेर
६ अप्रैल, १९७२

कृष्णस्वरूप सक्सेना



ऐतिहासिक पृष्ठभूमि : चेतना का प्रादुर्भाव

किसी भी देश में राजनैतिक चेतना आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं है, इसके लिए युगों युगों तक साधना और प्रयत्न करने पड़ते हैं। उदाहरणतः ब्रिटेन, सोवियत रूस और फ्रांस के इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि 'त्याग के परिणामस्वरूप ही स्वतन्त्रता प्राप्त होती है"। भारत का स्वतन्त्रता-इतिहास और राजस्थान में राजनैतिक चेतना का विकास भी क्रमशः इसी प्रकार धीरे धीरे हुआ है। प्रारम्भिक अवस्था में राजस्थान में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध राजनीतिक चेतना सुप्त अवस्था में थी, परन्तु राजस्थान का अपना एक इतिहास है "राजस्थान" त्याग और वीरता का पर्यायवाची शब्द कहा जा सकता है। हिन्दू शासन की समाप्ति के पश्चात् राजस्थान में मुसलमानों का शासन आरम्भ हुआ। १२०६ से लेकर १७०७ तक मुस्लिम शासन के आधिपत्य में रहने के बावजूद राजस्थान की जनता और राजाओं ने साम्राज्यवादी शक्तियों से संघर्ष किया। इसीलिए राजस्थान एक ऐसी पवित्र भूमि बना जहां मृत्यु से लड़ने वाले नागरिकों और राजाओं की कमी नहीं थी, सम्भवतः यही कारण था कि राजपूत एक ऐसी जाति का प्रतिनिधित्व करते रहे 'जिसे मृत्यु से कोई डर नहीं था।" इस संदर्भ में राजपूत नारियों ने विशेष योगदान दिया, जौहर की अपने आपको अग्नि के समर्पित कर देना एक ऐसा दृष्टांत बना जो युगों-युगों तक न केवल राजपूतों के लिए अपितु आने वाली सन्ततियों के लिए भी एक प्रेरणादायक स्रोत बना रहा।

राजस्थान का इतिहास और उसका स्वतन्त्रता-संग्राम इसी पृष्ठभूमि में फला फूला। संक्षेप में, उदयपुर, जोधपुर इत्यादि ऐसे राज्य थे जिन्होंने

स्वतन्त्रता संग्राम को नई दिशाएं दी। महाराणा प्रताप और वीर राठौड़ दुर्गादास ने राजस्थान मे नव चेतना जागृत करने मे अमूल्य योगदान दिया। अपने आपको कष्ट देकर जनता की सेवा का व्रत लिया, व्यक्तिगत स्वार्थ को देश-सेवा की बलिवेदी पर न्योछावर किया और "स्वतन्त्रता उपहार के रूप मे प्राप्त नहीं होती, यह त्याग और बलिदान चाहती है।" इस उक्ति को चरितार्थ कर दिखाया, अन्य प्रांतों के समान ही राजस्थान मे भी मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात् ब्रिटेन के साम्राज्यवाद का प्रभुत्व स्थापित हुआ। प्रारम्भिक अवस्था में इस प्रभुत्व को चुनौती भी दी गई परन्तु धीरे-धीरे राजस्थान के राजा इस साम्राज्यवाद के शिकार बन गये।

राजस्थान में राजनैतिक नेतृत्व का अभाव :

उदयपुर के महाराणा राजसिंह और जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् १८वी शताब्दी के मध्य मे राजपूत-राजनीति नेतृत्व विहीन हो गई। इस समय राजपूत राजाओ में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं था जो इस जाति की वीर परम्पराओ की रक्षा कर सके। ऐसी अवस्था मे मराठा और पिंडारियो ने जी भर कर राजपूताने को लूटा। महाराजा बुद्धसिंह की मराठो के हाथो पराजय ने इस तथ्य को उद्घाटित कर दिया कि यदि राजस्थान के राजाओ ने आपसी स्वार्थ और वैमनस्य को समाप्त नहीं किया तो उनका पतन सन्निकट है। इसीलिए अक्टूबर १७३४ में जयपुर महाराजा जयसिंह ने राजस्थान के सभी राजाओ का मेवाड स्थित हुरडा ग्राम मे एक सम्मेलन आयोजित किया जिससे कि पिंडारियो और मराठो के आक्रमण का सामना करने के लिए एक समान नीति का निर्माण किया जा सके, परन्तु राजाओ के आपसी वैमनस्य और कलह ने इस सम्मेलन को विफल बना दिया। इन परिस्थितियों मे राजस्थान के राजा ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सरक्षण प्राप्त करने के लिए आकर्षित हुए। ब्रिटेन यही चाहता था क्योंकि यह स्पष्ट था कि भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की रक्षा उस समय तक नहीं हो सकती थी जबतक कि भारत के देशी राजे और रजवाड़े ब्रिटिश साम्राज्यवाद का समर्थन न करें।

राजपूताना के राज्यों के प्रति ब्रिटिश-नीति (१८०३–१८०५) "ब्रिटिश सरक्षण" की नीति :

दिसम्बर १८०२ मे बसीन की संधि के पश्चात् लॉर्ड डलहौजी की

नीति जमुना पार ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रभाव-क्षेत्र को विकसित करने की थी। राजस्थान की राजनीतिक स्थिति उत्तरोत्तर बद से बदतर होती जा रही थी। ऐसी अवस्था में ब्रिटेन ने "देशी रियासतों में हस्तक्षेप की नीति" को अपनाया। ब्रिटिश सरकार का मत था कि मराठों के आक्रमण को समाप्त करने के लिए और अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए देशी राजाओं की सहायता आवश्यक ही नहीं अपितु अपरिहार्य है। ऐसी अवस्था में जब भारत के तात्कालिक गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने देशी रियासतों के राजाओं के सम्मुख ब्रिटिश सहायता का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने इसे सहर्ष ही स्वीकार कर लिया। यही कारण है कि १८०३ से लेकर १८०५ तक भारत के अनेक देशीय राजाओं और राजस्थान की रियासतों के साथ अनेक प्रकार की संधियां की गई जिन्होंने व्यावहारिक दृष्टि से ब्रिटिश प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया। राजस्थान में सर्वप्रथम जयपुर ने १८०३ की संधि पर हस्ताक्षर हुए। १२ दिसम्बर १८०३ को जयपुर महाराजा और ब्रिटिश साम्राज्य की ओर से जनरल लेक के मध्य एक समझौता हुआ जिसे १५ जनवरी १८०४ को भारत के तात्कालिक गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली ने अनुमोदित किया। इस संधि के अनुसार जयपुर महाराजा ने यह वचन दिया कि ब्रिटेन के मित्र और शत्रु जयपुर के मित्र और शत्रु समझे जावेंगे और बिना ब्रिटिश सत्ता की अनुमति के किसी भी विदेशी व्यक्ति को राज्य में सेवा करने का अवसर प्रदान नहीं किया जाएगा। साथ ही साथ जयपुर महाराजा ने ब्रिटेन की प्रभुसत्ता को भी स्वीकार किया। यद्यपि ब्रिटेन की तरफ से यह आश्वासन दिया गया कि वह जयपुर महाराजा के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। इसी प्रकार १८०३ में जोधपुर महाराजा भीमसिंह के साथ भी लार्ड लेक ने संधि वार्ता प्रारम्भ की। परन्तु महाराजा भीमसिंह की असामयिक मृत्यु के कारण संधि पर तत्काल हस्ताक्षर नहीं हो सके। अतएव महाराजा के उत्तराधिकारी महाराजा मानसिंह ने २२ दिसम्बर १८०३ को ब्रिटेन के साथ संधि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इस संधि के मुख्य उपबंध भी जयपुर संधि के समान ही थे। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन के द्वारा जोधपुर महाराजा को यह भी आश्वासन दिया गया कि यदि किसी बाहरी व्यक्ति या सत्ता ने जोधपुर पर आक्रमण किया तो ब्रिटेन जोधपुर की सहायता करेगा। इसी प्रकार अलवर महाराजा के साथ भी संधि पर हस्ताक्षर हुए। इस संधि की मुख्य बात यह थी कि महाराजा अलवर ने यह आश्वासन दिया कि यदि अलवर और

अन्य राज्यों के मध्य भविष्य में कोई वाद विवाद उत्पन्न हुआ तो वह ब्रिटेन के पच निर्णय के लिए सुपुर्द किया जाएगा। संधि का यह उपबंध संभवत ब्रिटेन के लिए सबसे अधिक लाभप्रद था क्योंकि इस उपबंध के अन्तर्गत ब्रिटेन अलवर के आतरिक मामलों में भी हस्तक्षेप कर सकता था। १८०५ में भरतपुर के साथ भी संधि सम्पन्न हुई। इस संधि के उपबंध भी जयपुर, जोधपुर और अलवर राजाओं के साथ हुई संधियों के समान ही थे। ब्रिटिश सरकार की ओर से लार्ड लेक ने स्पष्ट आश्वासन भी दिया था कि ब्रिटेन की सरकार भरतपुर के आतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी और न ही किसी प्रकार का मुआवजा भरतपुर राजा से प्राप्त करेगी।

उपर्युक्त संधियां इस बात का प्रमाण थीं कि राजस्थान के राजा अपने राज्यों में शांति और व्यवस्था बनाए रखने में सक्षम सिद्ध नहीं हुए थे और वे धीरे धीरे बाह्य सहायता पर निर्भर होते जा रहे थे परन्तु उनके हृदय में यह भय भी घर करता जा रहा था कि ब्रिटेन का हस्तक्षेप एक दिन उनकी स्वतन्त्रता को समाप्त कर देगा अतः उन्हें अधिक समय तक ब्रिटेन पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। १८०५ में लार्ड कार्नवालिस भारत के गवर्नर जनरल बनकर आए और उनके आगमन के साथ ही साथ राजस्थान के राजाओं के प्रति एक नई नीति का प्रारम्भ हुआ जिसे "अहस्तक्षेप" की नीति कहा जाता है।

ब्रिटेन की अहस्तक्षेप नीति (१८०५-१८११)

ब्रिटिश सरकार अब इस निष्कर्ष पर पहुंच चुकी थी कि देशी राजाओं के विवादों में हस्तक्षेप करना उनके लिए उचित नहीं है क्योंकि इससे ब्रिटेन के विरुद्ध जन भावना को बल मिलता था। ऐसी अवस्था में लार्ड कार्नवालिस ने अपने पूर्ववर्ती गवर्नर जनरल लार्ड वेलेजली की नीति का अनुसरण करना ठीक नहीं समझा। लार्ड कार्नवालिस का मत था कि यदि ब्रिटेन देशी राजाओं के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा तो उसका साम्राज्य अधिक आसानी से सुदृढ़ बन सकेगा अन्यथा राजपूत राजाओं की तरफ से संभव है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चुनौती दी जाय परंतु लार्ड कार्नवालिस बहुत ही कम समय तक भारत में रहे। उनके उत्तराधिकारी जार्ज बार्लो और लार्ड मिन्टो ने भी इसी अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया परन्तु १८१५ में लार्ड हेस्टिंग्ज के गवर्नर जनरल के रूप में आने पर ब्रिटेन की नीति पुनः बदल

गई। लार्ड हेस्टिग्ज ने लार्ड वेलेजली की नीति को पुनर्जीवित किया और इस प्रकार "हस्तक्षेप" की नीति का पुनर्जन्म हुआ।

लार्ड हेस्टिग्ज और हस्तक्षेप की नीति (१८१५–१८१८)

१८११ मे सर चार्ल्स मेटकाफ ने यह सुझाव दिया कि राजस्थान के राजपूत राजाओ का एक परिसघ बना दिया जाना चाहिए जो ब्रिटिश सरक्षण मे कार्य करे, जिससे कि राजस्थान के राज्यो मे पिण्डारी और मराठाओ की लूटमार को रोका जा सके तथा शाति और व्यवस्था स्थापित की जा सके। लार्ड हेस्टिग्ज ने मेटकाफ की नीति का अनुमोदन किया और देशी राजाओ को ब्रिटिश सरक्षण प्रदान करने के लिए उनसे बहुत नजदीक के सबध बनाने की चेष्टा की। लार्ड हेस्टिग्ज को विश्वास था कि राजपूताना के तीन प्रमुख राज्य जयपुर, जोधपुर और उदयपुर सघ बनाने की नीति को अवश्य स्वीकार कर लेंगे क्योकि इन राज्यो मे आतरिक गतिरोध बढ़ता जा रहा था तथा शाति और व्यवस्था खतरे मे पड़ती जा रही थी। तदनुसार १८१८ मे लार्ड हेस्टिग्ज ने जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, और उदयपुर, के साथ सधि-पत्र पर हस्ताक्षर किए। सक्षेप मे, १८१८ की सधि का परिणाम यह था कि राजस्थान के राजाओ ने ब्रिटेन के प्रभुत्व को पूरे रूप मे स्वीकार कर लिया था और अपने आपको ब्रिटिश सत्ता के अधीन कर दिया था। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन की तरफ से इन राज्यो के आतरिक मामलो मे भी हस्तक्षेप आरम्भ हुआ और विशेषत जयपुर तथा जोधपुर मे इस हस्तक्षेप का घोर विरोध भी हुआ। आतरिक स्थिति मे हस्तक्षेप का मुख्य कारण राजा और उसके जागीरदारो के मध्य मत विभिन्नता थी। विशेषत उत्तराधिकार के प्रश्न पर जयपुर, कोटा और जोधपुर मे अनेक आतरिक मतभेद उठ खड़े हुए। ब्रिटेन के हस्तक्षेप ने आग मे घी का काम किया। इन देशी रियासतो के सामतो मे एक नई भावना ने जन्म लिया और वह यह था कि ब्रिटेन अपने हस्तक्षेप के द्वारा उनकी स्वायत्तता को समाप्त कर देना चाहता है। इस प्रकार ब्रिटिश विरोधी भावना के उदित होने का यह प्रथम चरण था।

उदयपुर मे ब्रिटिश हस्तक्षेप

राजनैतिक, आर्थिक और आन्तरिक दृष्टि से इस समय उदयपुर की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। उदयपुर के महाराणा का प्रभुत्व नाममात्र का रह गया था। उनके प्रभुत्व को रासलौर के नीमडी के ठाकुर और शाहपुरा के

राजा ने चुनौती दी थी। इनके अतिरिक्त उदयपुर के जागीरदार महाराणा के आदेश को मानने के लिए तयार नहीं थे ऐसी अवस्था म ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट कनल टाड ने महाराणा उदयपुर की सत्ता को पुन स्थापित करने के लिए जागीरदारो और महाराणा के मध्य एक समझौता कराना चाहा जिसे टॉड कोलनामा कहा जाता है। इसके अधीन यह प्रावधान रखा गया कि यदि उदयपुर महाराणा के आदेश का पालन नही किया गया तो ब्रिटेन उदयपुर महाराणा की सशस्त्र सहायता करेगा और उनके आदेश का पालन करवाएगा। मार्च १८२१ मे एक नई स्थिति उत्पन्न हुई शाह शिवलाल महाराणा के द्वारा प्रधान नियुक्त किए गए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शिवलाल को ब्रिटिश समर्थन प्राप्त था। फरवरी १८२३ म भ्रष्टाचार और अनुशासन हीनता के आरोप मे उदयपुर महाराणा ने शिवलाल को बर्खास्त कर दिया। उदयपुर मे ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट ने महाराणा के इस आदेश का अनुमोदन करने से इन्कार कर दिया परन्तु महाराणा इस सन्दर्भ मे ब्रिटेन ▪ हस्तक्षेप को स्वीकार करने के लिए तयार नहीं थे उनका कहना था कि यह उदयपुर का अपना आतरिक मामला है और ब्रिटेन को हस्तक्षेप नही करना चाहिए। अतत ब्रिटिश सरकार ने महाराणा के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया और इस प्रकार ब्रिटेन और उदयपुर के बिगन्ते हुए सबधों में एक नया मोड आ गया।

जयपुर में हस्तक्षेप

२१ दिसम्बर १८१८ को जयपुर महाराजा जगतसिंह की मृत्यु हो गई। निसतान होने के कारण उनके उत्तराधिकारी का प्रश्न गम्भीर बन उठा। मोहनराम नाजिर ने नरवर क भूतपूर्व राजा के पुत्र मोहनसिंह को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। यह भी कहा गया कि महाराजा जगतसिंह ने मृत्यु से पूर्व मोहनसिंह को गोद ले लिया था और उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। इस समय ब्रिटिश सरकार की ओर से कोई हस्तक्षेप नही किया गया परन्तु मोहनराम नाजिर के विरोधी ठाकुरो ने मोहनसिंह को राजा मानने से इन्कार कर दिया। इन विरोधियो का कहना था कि ठाकुर बहादुरसिंह ▪ उत्तराधिकारी का दावा अधिक न्यायोचित है और उसे ही उत्तराधिकारी के रूप मे नियुक्त किया जाना चाहिए। इस स्थिति मे ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप प्रारम्भ किया। तात्कालिक ब्रिटिश एजेन्ट ओक्टर लोनी ने जयपुर के जागीरदारो की एक सभा आयोजित की जिसम उत्तराधिकार के प्रश्न पर जागीरदारों

से अपने अपने तर्क प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। परन्तु इसी बीच इस समाचार ने कि महारानी जयपुर गर्भवती है स्थिति को परिवर्तित कर दिया। २५ अप्रेल १८१९ को महारानी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसे सवाई जयसिंह के नाम पर जयपुर का महाराजा घोषित किया गया। साथ ही साथ महारानी ने मोहनराम नाजिर को बरखास्त कर दिया और उसके स्थान पर जोठराम को राज्य का मुख्य कार्यकारी अध्यक्ष नियुक्त किया। महारानी के इस कार्य ने ब्रिटिश हस्तक्षेप [redacted] आमन्त्रित किया। ओक्टर लोनी मोहनराम नाजिर का समर्थक था। अपनी बात मनवाने के लिए ओक्टर लोनी ने ब्रिटिश सशस्त्र सेना को भी जयपुर भेजने के आदेश जारी कर दिए परन्तु महारानी ने साहस के साथ ब्रिटिश सरकार को चुनौती देते हुए कहा 'जयपुर की संधि जयपुर महाराजा और ब्रिटेन के बीच में हुई है महाराजा के नौकरों के साथ यह संधि नहीं हुई है' इसी बीच ओक्टर लोनी ने जयपुर सरकार की सहायता के लिए एक योरोपीय अधिकारी की नियुक्ति का प्रस्ताव भी किया और केप्टेन स्टीवर्ट को राज्य का राजस्व अधिकारी नियुक्त कर दिया गया, साथ ही साथ जोठराम को पदमुक्त करके उसके स्थान पर रावल बैरीसाल को नियुक्त किया गया। इस घटना ने जयपुर रानी और ब्रिटिश सत्ता के मध्य संघर्ष को जन्म दिया। हिंडौन और जयपुर के आसपास के क्षेत्र से सैनिकों ने महारानी के समर्थन में जयपुर की ओर प्रस्थान किया, उधर ब्रिटिश सरकार ने नसीराबाद से ब्रिटिश सेना को जयपुर में बुलवा लिया परन्तु इन सबके बावजूद जयपुर राजमाता न रावल बैरीसाल को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। अतत ब्रिटेन को सरकार को झुकना पड़ा ओक्टर लोनी ने स्थिति को और न बिगड़ने देने के लिए हस्तक्षेप किया और बैरीसाल को पदमुक्त करके उसके स्थान पर डिग्गी के ठाकुर मेघसिंह और मनोहर नारायण और गोविन्द नारायण को मुख्य राजस्व अधिकारी [redacted] पद पर नियुक्त किया। इस प्रकार जयपुर राजमाता और ब्रिटिश अधिकारियों के मध्य समझौता सम्पन्न हुआ। परन्तु यह घटना इस बात का प्रमाण थी कि १८०३ और १८१८ की संधि के बावजूद राजा और जागीरदार अपने आतरिक मामलों में ब्रिटेन के हस्तक्षेप को स्वीकार करने में तैयार नहीं थे।

कोटा में हस्तक्षेप

२१ नवम्बर १८१९ को कोटा महाराव उम्मेदसिंह की मृत्यु हो गई। उनके उत्तराधिकारी महाराव किशोरसिंह और तात्कालिक कोटा राज्य अधि

कारी जालिमसिंह के पुत्र माधोसिंह के मध्य अच्छे सबध नही थे। इस अवस्था में माधोसिंह महाराव किशोरसिंह को अपना स्वामी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। ६ और ७ अप्रेल १८१६ को महाराजा किशोरसिंह के समर्थकों ने सेना को बुला लिया, उधर राजराणा माधोसिंह ने भी अपने समर्थक सैनिकों को आमत्रित कर लिया। इस प्रकार एक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई जिसने ब्रिटेन के हस्तक्षेप को आमत्रित किया। कर्नल टॉड ने एक १२ सूत्रीय समझौता तैयार किया जिसे रावराजा और राजराणा दोनों ने ही स्वीकार कर लिया। इस समझौते के अनुसार राजराणा को २०० सैनिक नियुक्त करने का अधिकार दिया गया परन्तु रावराजा ने कुछ और अधिक सैनिक बुलाकर स्थिति को और अधिक गम्भीर बना दिया। कर्नल टॉड के द्वारा रावराजा को अंतिम चेतावनी (अल्टीमेटम) दे दी गई कि वह पाच दिन अदर अदर उनके समझौते को स्वीकार करलें अन्यथा उसके भयकर परिणाम होंगे। महाराव समझौते को स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे, अन्तत २८ दिसम्बर को महाराजा ने कोटा से बू दी की ओर प्रस्थान किया। कर्नल टॉड ने महाराणा को चेतावनी दी कि उनका सशस्त्र सामना किया जाएगा। अन्तत नगरोल के पास महाराव की सेना और राजराणा व ब्रिटिश समर्थित सेना के मध्य सघर्ष हुआ। महाराव के छोटे भाई किशोरसिंह बुरी तरह घायल हुए और महाराव को जयपुर सीमा म शरण लेने के लिए बाध्य होना पडा। ब्रिटेन के इस आचरण ने अन्य राजपूत राजाओ को सशकित बना दिया। वे सोचने लगे कि आज जो कुछ कोटा महाराव के साथ हुआ है वही कल उनके साथ भी हो सकता है। ऐसी अवस्था मे ब्रिटेन के प्रति उनके दृष्टिकोण मे परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। इसी बीच १२ नवम्बर को कोटा महाराव नाथद्वारा पहुचे। कर्नल टॉड के वकील ने एक समझौता-प्रस्ताव रखा जिस पर १८ नवम्बर १८२१ को महाराव ने हस्ताक्षर कर दिए। एक प्रकार से यह ब्रिटेन की सत्ता के समक्ष कोटा महाराव का पूर्ण समर्पण था। कोटा के आतरिक मामलो मे ब्रिटिश हस्तक्षेप ने एक बार पुन यह सिद्ध कर दिया कि ब्रिटेन का एकमात्र उद्देश्य है राजस्थान म अपने साम्राज्यवाद को पूरी तरह मजबूत बना देना। साथ ही साथ यह देशीय राजाओ की आखें खोल देने के लिए पर्याप्त था। सक्षेप मे, देशीय राज्यो की जनता का ब्रिटेन की न्यायप्रियता में से विश्वास हिल उठा और उनमे भी ब्रिटिश विरोधी भावनाए जन्म लेने लगी।

अलवर में हस्तक्षेप

इसी बीच अलवर में भी राजनीतिक दृष्टि से हस्तक्षेप किया गया। १८१५ में रावराजा बख्तावरसिंहजी की मृत्यु हो गई और इसके साथ ही उनके उत्तराधिकार का प्रश्न विकट रूप धारण करने लगा। गद्दी के लिए मुख्यत दो दावेदार थे जिनमें से एक उनका अनौरस पुत्र बलवन्तसिंह, जो कि एक मुस्लिम वैश्या से उत्पन्न हुआ था और जिसने बाद में हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया था—दावेदार था, और दूसरा महाराजा का भतीजा बनेसिंह था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि महाराजा की इच्छा अपने अनौरस पुत्र को उत्तराधिकार के रूप में गद्दी पर बैठाने की थी और इसीलिए जब उनकी मृत्यु के बाद फिरोजपुर के अहमद बख्श खां ने अपने मरसए में बलवन्तसिंह को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया तो ब्रिटिश सरकार ने कोई आपत्ति नहीं की परन्तु महाराजा के जागीरदार इस व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं थे। अततः दोनों दलों के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार बनेसिंह को अलवर राज्य का नाममात्री महाराजा और बलवन्तसिंह को वास्तविक शासक के रूप में स्वीकार कर लिया गया। इस सदर्भ में ब्रिटिश सरकार का रवैया बड़ा विचित्र रहा। ब्रिटिश सरकार के अनुसार 'यदि आवश्यकता हुई तो वह भविष्य में हस्तक्षेप करने का अधिकार सुरक्षित रखती है' १८२५ में नवाब अहमद बख्श खा ने दिल्ली की यात्रा की। इस यात्रा के दौरान उनकी हत्या करने वाला बनेसिंह के दल का एक सदस्य था, ब्रिटिश एजेन्ट ओक्टर लोनी ने आवश्यक जाच पड़ताल के आदेश दिए परन्तु इस घटना ने बलवन्तसिंह और बनेसिंह के आपसी दलों के मध्य वैमनस्य और कटुता उत्पन्न कर दी। ऐसी अवस्था में पुन दोनों दलों में एकता स्थापित करने के लिए ओक्टर लोनी के हस्तक्षेप से एक समझौता हुआ जिसके अनुसार यह तय हुआ कि—

(१) बनेसिंह और बलवन्तसिंह के मध्य राजकोष का समान वितरण किया जाएगा।

(२) वे परगने जिनकी निश्चित चार लाख रुपय से ज्यादा है और जो ब्रिटिश सरकार के द्वारा रियासत को प्रदान किए गए हैं उन्हे बलवन्तसिंह और उनके उत्तराधिकारियों को दिया जायगा।

(३) उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में य परगने अलवर राज्य को वापिस दे दिए जाएंगे।

(४) यह भी घोषित किया गया कि यदि महमद बख्श खा की हत्या मे बलेसिह का सन्देहात्मक रूप भी रहा है तो भी इसकी स्पष्ट घोषणा करना वाछित नही होगा।

उपर्युक्त शब्दो पर १८२५ मे समझौता सम्पन्न हुआ जिसे २१ फरवरी १८२६ को ब्रिटिश सरकार के द्वारा अनुमोदित कर दिया गया। यह इस बात का प्रमाण था कि ब्रिटिश सरकार राज्यो के आतरिक मामलो में हस्तक्षेप करने के लिए तत्पर है और वह ऐसा कोई अवसर नही खोना चाहती जिसके द्वारा वह अपनी सत्ता को मजबूत बना सके।

भरतपुर मे हस्तक्षेप .

भरतपुर में भी उत्तराधिकार का प्रश्न ब्रिटिश हस्तक्षेप का कारण बना। २६ फरवरी १८२५ को महाराजा बलदेवसिंह स्वर्गवासी हुए और इसके साथ ही उत्तराधिकार के दो दावेदार खडे हुए इसमे से एक बलदेवसिंह के पुत्र बलवतसिंह और दूसरे, दुर्जनसाल थे। ब्रिटिश सरकार द्वारा बलवतसिंह को ६ फरवरी १८२५ को राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया परतु इसके साथ ही दुर्जनसाल और उसके जाट समर्थकों ने विद्रोह खड़ा कर दिया। १३ मार्च १८२५ को दुर्जनसाल और उसके साथियों ने भरतपुर के किले पर आक्रमण किया और उस पर अपना नियत्रण स्थापित कर लिया। ओक्टर लोनी ने दुर्जनसाल और उसके साथियो की इस कार्यवाही को "दिन दहाडे डाका" डालने की सज्ञा दी और बलवतसिंह के समर्थन की घोषणा की। दूसरी ओर, दुर्जनसाल ने जाट जाति के नाम पर भरतपुर के प्रत्येक व्यक्ति से यह अनुरोध किया कि वह उसका समर्थन करे परतु इसी बीच गवर्नर जनरल ने यह निर्णय दिया कि यदि उत्तराधिकार के प्रश्न पर राज्य मे यदि कोई विवाद है तो राज्य का यह अपना मामला है और ब्रिटिश सरकार को इसमें हस्तक्षेप नही करना चाहिए साथ ही ओक्टर लोनी को यह आदेश दिया कि वह सशस्त्र हस्तक्षेप न करे और बलवतसिंह का समर्थन करना बद करदे। इसी बीच दुर्जनसाल के छोटे भाई माधोसिंह ने सत्ता हथियाने का प्रयत्न किया और डीग के किले पर आधिपत्य जमा लिया। माधोसिंह ने दुर्जनसाल के विरुद्ध ब्रिटेन का समर्थन भी प्राप्त करना चाहा बशर्ते कि बलवन्तसिंह उसे गुत्थियागी देने के लिए तैयार हो जाए। एक बार स्थिति पुन बदली, मैटकोफ ब्रिटिश रेजीडेन्ट और राजपूताना म एजन्ट गवर्नर जनरल नियुक्त किए गए।

उनका दृष्टिकोण यह था कि राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने की अन्तिम जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार की है और इसलिए वह बिगड़ती हुई स्थिति को आंख मूंद कर नहीं देख सकते। तदनुसार मैटकॉफ ने महाराजा बलवतसिंह के समर्थन में ब्रिटिश सेना को भरतपुर भेजने का आदेश दे दिया। अतः १० अक्टूबर १८२५ को ब्रिटिश सेना ने भरतपुर किले पर आक्रमण किया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अलवर, जोधपुर, जयपुर और करौली की सेनाओं ने दुर्जनसाल की सहायता की। यद्यपि मैटकॉफ को इस समाचार में विश्वास नहीं था। दुर्जनसाल ने प्रस्ताव किया कि वह बलवतसिंह का समर्थन करने के लिए तैयार है, यदि ब्रिटिश सेनाएं भरतपुर से वापिस हट जाएं, परन्तु मैटकॉफ ने बिना शर्त दुर्जनसाल के समर्पण की मांग की। अतः किले की दीवार को डायनामाइट से उड़ा दिया गया और इस प्रकार ब्रिटिश सेना ने भरतपुर शहर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। दुर्जनसाल को गिरफ्तार कर लिया गया और उसे अहमदाबाद भेज दिया गया।

जोधपुर में हस्तक्षेप :

१८१८ की सन्धि पर हस्ताक्षर हुए अभी अधिक समय भी नहीं हुआ था कि ब्रिटिश सरकार ने जोधपुर के आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने का प्रयत्न किया। जैसे ही १८१८ की सन्धि पर हस्ताक्षर सम्पन्न हुए ऐसा विश्वास किया जाने लगा था कि जोधपुर महाराजा मानसिंह अपना मानसिक सन्तुलन खो चुके हैं। अक्टूबर १८१८ में महाराजा मानसिंह ने ब्रिटेन से सशस्त्र सहायता मांगने की इच्छा प्रकट की और इन सैनिक टुकड़ियों का खर्चा बरदाश्त करने की इच्छा भी प्रकट की। परन्तु उनका कहना यह था कि यह सेनाएं उनके स्वयं के आदेशों के अन्तर्गत कार्य करेंगी और असन्तुष्ट जागीरदारों एवं ठाकुरों को दबाने में जोधपुर महाराजा की सहायता करेंगी। ब्रिटिश एजेन्ट ऑक्टर लोनी ब्रिटिश हस्तक्षेप का समर्थक था परन्तु इसके पहले कि सशस्त्र सेनाएं भेजी जाएं वह राज्य की वास्तविक स्थिति का जायजा ले लेना चाहता था। इसलिए ऑक्टर लोनी ने अपने प्रधान मुंशी बरकत अली को जोधपुर की स्थिति का वास्तविक पता लगाने के लिए भेजा। इसी बीच जोधपुर के आन्तरिक स्थिति दिनोंदिन बिगड़ने लगी और महाराजा के विरोधी और प्रतिस्पर्धी फतेहराज ने जोधपुर सेनाओं के समर्थन से समूचे शहर पर अपना प्रभावकारी नियन्त्रण स्थापित कर दिया। व्यवहार में महाराजा और उनके मन्त्रियों का शासन केवल किले तक सीमित रह गया। इस स्थिति में बरकत

अली जोधपुर पहुचा, बरकत अली इस निष्कर्ष पर पहुचा कि वास्तव मे महाराजा मानसिक दृष्टि से बिल्कुल ठीक हैं। बरकत अली ने महाराजा की पुन सत्ता स्थापित करने के लिए अपनी रेजीडेन्ट की ओर से सहायता का आश्वासन दिया। परतु बरकत अली की बातचीत से महाराजा मानसिंह को यह सदेह हुआ कि सभवत मित्रता और सहायता के नाम पर ब्रिटेन उनकी स्वतत्रता और राज्य के आतरिक मामलो मे हस्तक्षेप करना चाहता है। अत महाराजा ने ब्रिटिश सहायता के प्रस्ताव को नम्रतापूर्वक ठुकरा दिया परतु अपने जागीरदारो एव अन्य अधीनस्थ कर्मचारियो पर इस प्रकार का प्रभाव अवश्य डाला कि ब्रिटिश सरकार उन्हें ही राज्य का वास्तविक शासक समझती है। महाराजा मानसिंह के इस प्रयत्न ने जोधपुर के अन्य ठाकुर और जागीरदारों की स्वामीभक्ति भी प्राप्त करली।

बरकत अली की रिपोर्ट पर ब्रिटिश सरकार ने अजमेर के सुपरिटेन्डेन्ट एफ० विलडर को जोधपुर की वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिए भेजा। जोधपुर मे विलडर के ठहरने के दौरान महाराजा ने पुन इस प्रकार का आचरण किया कि ब्रिटिश सरकार उन्हे ही जोधपुर का सर्व सर्वा मानती है और इस प्रकार अपने असतुष्ट जागीरदारो पर अपना प्रभाव जमाने की चेष्टा की। एफ० विलडर ने महाराजा को ब्रिटेन की ओर से सशस्त्र सहायता देने का पुन प्रस्ताव किया परतु महाराजा ने पुन नम्रतापूर्वक इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

१८२१ मे जोधपुर के असतुष्ट ठाकुरो एव जागीरदारों ने ब्रिटिश एजेन्ट कैप्टन टॉड को महाराजा के विरुद्ध शिकायतों का एक मेमोरेण्डम प्रस्तुत किया। इसी बीच महाराजा ने जोधपुर के अनेक असतुष्ट ठाकुरों एव जागीरदारों को राज्य से निष्कासित कर दिया गया था। अत ब्रिटिश एजेन्ट ओक्टर लोनी ने महाराजा को परामर्श दिया कि वह इन निष्कासित ठाकुरो एव जागीरदारो को क्षमा याचना प्रदान करें। महाराजा ने ब्रिटिश सरकार को विश्वास दिलाया कि वे इन ठाकुरो और जागीरदारो की शिकायतों पर अवश्य विचार करेंगे यदि वे उनसे प्रत्यक्ष बातचीत करें। तदनुसार ब्रिटिश रेजीडेन्ट ने इन असतुष्ट ठाकुरो को यह परामर्श दिया कि व जोधपुर वापिस लौट जाए और महाराजा से सीधी बातचीत करें। साथ ही साथ उन्हे यह भी आश्वासन दिया गया कि इस यात्रा के दौरान उनके जीवन और सम्मान की रक्षा

की जाएगी। परन्तु इन असन्तुष्ट जागीरदार और ठाकुरों को महाराजा के आदेश से रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिया गया यद्यपि कुछ समय बाद इन्हें रिहा भी कर दिया गया था। इस घटना ने प्रोस्टर लोनी को महाराजा के खिलाफ बहुत अधिक असन्तुष्ट कर दिया। उन्होंने महाराजा को ब्रिटेन की 'नाराजगी' भी प्रकट की। साथ ही साथ एफ० विलडर को जोधपुर की स्थिति का जायजा लेने के लिए पुनः भेजा गया। महाराजा जोधपुर और विलडर के मध्य बातचीत बड़े ही तनावपूर्ण वातावरण में हुई। महाराजा का कहना था कि १८१८ की संधि के अनुसार ब्रिटेन उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। अन्ततः महाराजा ने आवा, आसोप, निमेज और रास के ठाकुरों को पुनः जागीरें दे दीं और ब्रिटेन से पुनः इस आश्वासन की मांग की कि ब्रिटिश सरकार उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। एफ० विलडर ने ब्रिटिश सरकार की ओर से महाराजा को आश्वासन दिया कि उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। यद्यपि प्रोस्टर लोनी एफ० विलडर के इस आचरण से सन्तुष्ट नहीं था परन्तु क्योंकि विलडर वचन दे चुका [illegible] अतः गवर्नर जनरल ने उसकी वचन की रक्षा करने का निश्चय किया। १८२४ में महाराजा और उनके जागीरदारों के मध्य पुनः विवाद आरम्भ हो गया। ब्रिटिश सरकार जोधपुर के ठाकुरों का पक्ष ले रही थी परन्तु ब्रिटिश रेजीडेन्ट यह नहीं चाहता था कि वह असन्तुष्ट जागीरदारों और ठाकुरों की तरफ से पुनः हस्तक्षेप करे इसी बीच स्थिति पुनः बदली और जोधपुर के असन्तुष्ट ठाकुर धोकलसिंह ने जोधपुर क्षेत्र में प्रवेश किया और डीडवाना पर आधिपत्य जमा लिया। महाराजा मानसिंह ने ब्रिटिश सहायता की माग की। परन्तु ब्रिटिश सरकार उस समय तक सहायता के लिए कोई भी वचन देने के लिए तैयार नहीं थी जबतक कि महाराजा अपने समस्त विवाद ब्रिटिश सरकार के सम्मुख पंच निर्णय के लिए रखने को तैयार न हो जाए। धोकलसिंह मेड़ता तक आ पहुंचा और अब स्थिति ने काफी भयंकर रूप धारण कर लिया, परिणामतः महाराजा मानसिंह इस बात के लिए तैयार हो गए कि उनके वह जागीरदारों के मध्य विवाद को ब्रिटिश सरकार के पंच निर्णय के लिए प्रस्तुत कर दिया जाएगा। ब्रिटिश सरकार ने धोकलसिंह पर दबाव डाला कि वह अपनी सेनाएं जोधपुर से हटालें, धोकलसिंह ने जोधपुर प्रदेश से अपनी सेनाएं हटाली और इस प्रकार थोड़े समय के लिए जोधपुर [illegible] शान्ति स्थापित हो गयी।

बीकानेर मे हस्तक्षेप

जोधपुर के समान ही बीकानेर मे भी राजा और जागीरदारो के मध्य कटुता और वैमनस्यता का वातावरण था। जागीरदार राजा के आदेश को चुनौती देते थे और इस प्रकार शान्ति और व्यवस्था को जब खतरा उत्पन्न हो जाता था। तदनुसार १८१८ की सधि के पश्चात् बीकानेर महाराजा ने अपने विद्रोही जागीरदारो को दबाने के लिए ब्रिटेन से सशस्त्र सहायता का अनुरोध किया। ब्रिटेन भी बीकानेर म रुचि रखता था क्योंकि भागलपुर तक व्यापार करने का यह सीधा मार्ग था। अत ब्रिटिश रेजीडेन्ट ने एक घुड़सवार सेना बीकानेर भेज दी जिसने तुरन्त सीमा वाहन सानुन और बैरोड इलाको पर अपना नियत्रण स्थापित किया लेकिन इसी बीच फतेहाबाद और सिरसा मे भाटियो ने विद्रोह कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने अपने हस्तक्षेप का यह स्वर्ण अवसर समझा। ब्रिटिश सेना को आदेश दिये गए कि वह फतेहाबाद और सिरसा पर पुन आधिपत्य स्थापित कर ले और फिर बीकानेर-क्षेत्र मे प्रवेश करले। ब्रिगेडियर अरनोल्ड के नेतृत्व म ब्रिटिश सेना ने बीकानेर के प्रमुख इलाकों पर जैसे ददरेवा सिधमोह सिरसीला चुरू, भरिया सुजुकला और गढेली पर अपना नियत्रण स्थापित किया। महाराजा की सेनाओ ने भी इस कार्यवाही मे ब्रिटिश सेना की सहायता की परन्तु असन्तुष्ट जागीरदारों के नेता ठाकुर पृथ्वीसिंह के द्वारा इस कार्यवाही का घोर विरोध किया गया। अन्तत ठाकुर पृथ्वीसिंह को किला छोड़ना पड़ा और बीकानेर महाराजा म उसने क्षमा-याचना की। इसी प्रकार ददरेवा के ठाकुर सूरजमल ने भी आत्म समपर्ण कर दिया और शेखावटी की ओर भाग गया। गढेली भरिया सिरसीला और चुरू के ठाकुरों ने भी समपर्ण कर दिया और इस प्रकार ब्रिटिश सैनिक सहायता के परिणाम स्वरूप बीकानेर में शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो गई।

१८२५ के बाद ब्रिटेन की नीति

कोटा जयपुर उन्यपुर, अलवर और भरतपुर तथा जोधपुर की घटनाओ ने ब्रिटिश सरकार पर अनेक प्रकार की जिम्मेन्दारियां डाल दी थी। जैसाकि हम देख चुके हैं इन राज्यो के आतंरिक मामलों म ब्रिटिश हस्तक्षेप ने ब्रिटेन के प्रति विरोध को जन्म दिया था। वास्तव मे १८१८ मे जब राजस्थान के अनेक राज्यो के साथ विभिन्न सधिया की गई थीं तो ब्रिटिश

सरकार ने यह कभी नहीं विचार था कि उस इस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना होगा। ऐसी अवस्था में १८२५ के बाद ब्रिटेन की नीति में पुनः परिवर्तन के लक्षण दिखाई दिए। सरकार ने पुनः ऐसे आदेश जारी किए कि जहाँ तक सम्भव हो राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाए। यही कारण है कि १८२१ में जब जयपुर की महारानी ने मोटराम को अपना मुख्त्यार नियुक्त किया तब ब्रिटिश सरकार ने बिना किसी हस्तक्षेप के मोटराम की नियुक्ति का अनुमोदन कर दिया। इसी प्रकार उदयपुर में भी महाराणा के आन्तरिक कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया। बीकानेर और जोधपुर के प्रति भी यही नीति अपनाई गई। संक्षेप में १८२५ के बाद ब्रिटेन ने एक बार पुनः अहस्तक्षेप की नीति का अनुसरण किया और इस प्रकार अनावश्यक रूप से राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का निश्चय किया। इसी बीच १८३३ में भारत के नये गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिंक बनकर आये।

बैंटिंक की नीति

बैंटिंक ने यद्यपि मेटकाफ की अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया परन्तु उन्होंने इसका कड़ाई से पालन करने से इन्कार कर दिया। संक्षेप में, बैंटिंक की नीति को 'सुविधा' की नीति कहा जा सकता है अर्थात् जहाँ आवश्यक हो वहाँ हस्तक्षेप करने के लिए गवर्नर जनरल तैयार थे। १८३२ में गवर्नर जनरल बैंटिंक ने अजमेर में एक देशी राजाओं का दरबार आयोजित किया जिसमें टोंक के नवाब अमीरखाँ, उदयपुर के महाराणा जवानसिंह, जयपुर के महाराजा जयसिंह, कोटा के महाराव रामसिंह, किशनगढ़ के महाराजा कल्याणसिंह और बूंदी के महाराव रामसिंह ने भाग लिया। बीकानेर और जैसलमेर के महाराजा बहुत अधिक दूरी के कारण उपस्थित नहीं हो सके और जोधपुर के महाराजा मानसिंह अपने राज्य की आंतरिक स्थिति के कारण सम्मिलित नहीं हो पाए। इस अवसर पर राजाओं ने ब्रिटिश सरकार से यह अनुरोध किया कि वे उनके राज्यों में पड़ने वाली डकैतियों और ठगों के आक्रमण से उनकी रक्षा करें साथ ही साथ यह भी अनुरोध किया गया कि विभिन्न राज्यों के आपसी विवादों को सुलझाने में भी ब्रिटिश सरकार अपने प्रभाव का उपयोग करे। परन्तु गवर्नर जनरल लार्ड बैन्टिंग ने इस अनुरोध को मानने से इन्कार कर दिया। उनका कहना था यह राज्यों का

अपना आन्तरिक मामला है और उन्हें ही अपनी स्थिति को सम्भालना चाहिए। परन्तु इन सबके बावजूद जोधपुर की स्थिति बहुत अधिक गम्भीर बनती जा रही थी ऐसा विश्वास किया जाता है कि जोधपुर के महाराजा नाथो के प्रभाव मे थे। साथ ही साथ वे अन्य राजाओ के साथ मिलकर ब्रिटेन के विरुद्ध एक मोर्चा भी बनाना चाहते थे। यह भी अफवाह थी कि जोधपुर महाराजा रूस और फारस के साथ मिलकर ब्रिटेन का विरोध करना चाह रहे हैं ऐसी अवस्था म ब्रिटिश सरकार जोधपुर म हस्तक्षेप करने का बहाना ढूढ रही थी।

जोधपुर मे हस्तक्षेप

अतत २ अगस्त १८३९ को ब्रिगेडियर रीड के नेतृत्व मे ब्रिटेन की सशस्त्र सेना ने जोधपुर सीमा का उल्लघन कर राज्य मे प्रवेश किया। जोधपुर महाराजा ने ब्रिटेन की सभी मागो को स्वीकार करते हुए २७ सितम्बर १८३९ को किला खाली कर दिया और इस प्रकार ब्रिटिश विरोधी महाराजा को अतत ब्रिटेन की सत्ता के समक्ष झुकना पड़ा। इसी प्रकार जयपुर और शेखावाटी इलाको में शाति और व्यवस्था बनाए रखने के नाम पर मेजर फास्टर के नेतृत्व मे ब्रिटिश सेना ने प्रवेश किया और शेखावाटी-क्षेत्र के कुख्यात लुटेरे डूगरसिंह उर्फ डूगरी को गिरफ्तार किया गया। इस प्रकार देशी राज्यो म शाति और व्यवस्था के नाम पर ब्रिटिश सरकार का हस्तक्षेप उत्तरोत्तर बढता गया।

लार्ड डलहौजी की नीति और राजस्थान के राजा

अब भारत के गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी बने। उन्होने एक नई नीति का सूत्रपात किया जिसे 'राज्यो का विलय' की नीति के नाम से पुकारा जाता है। इस नीति का मुख्य आधार यह था कि यदि देशी रियासत के राजा की निस्सतान मृत्यु हो जाय तो उसके उत्तराधिकारी की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार के अनुमोदन पर ही हो सकेगी और यदि कोई उत्तराधिकारी नहीं है तो उस परिस्थिति में उस रियासत को ब्रिटिश साम्राज्य म मिला लिया जायगा। लार्ड डलहौजी की इस नीति ने राजस्थान के राजाओ को चिंतित कर दिया। उदाहरणत १० जुलाई १८५२ को करौली के महाराजा नरसिंह पाल की मृत्यु हुई। लार्ड डलहौजी ने प्रस्ताव किया कि करौली रियासत को ब्रिटिश साम्राज्य मे मिला लिया जाय परतु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने गवर्नर

जनरल के इस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार ब्रिटिश सरकार के द्वारा मदनपाल को करौली महाराज के रूप में मान्यता प्रदान करने से इन्कार कर दिया। संक्षेप में, ब्रिटिश सरकार की इन गतिविधियों ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे देशी रियासतों को पूरी तरह अपने नियन्त्रण में रखना चाहते हैं। ब्रिटेन की इस नीति ने राजाओं को भी उनकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान करा दिया। अब वे समझ गये कि, सच्चे शब्दों में वे ब्रिटेन के हाथों में कठपुतली बन चुके हैं।

इस प्रकार राजस्थान में ब्रिटेन का प्रभाव-क्षेत्र स्थापित होता गया। विभिन्न देशी रियासतों के राजे और महाराजे नाममात्र के शासक रह गये। वास्तविक सत्ता ब्रिटेन के हाथों में आ चुकी थी लेकिन इन सबके बावजूद जयपुर, जोधपुर, कोटा और भरतपुर में ब्रिटेन के हस्तक्षेप की नीति का जो खुला विरोध किया गया वह इस बात का प्रतीक था कि जनता, जागीरदार और राजे ब्रिटेन की सत्ता को सहर्ष रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। वास्तव में वे आन्तरिक कार्यों में ब्रिटेन का हस्तक्षेप नहीं चाहते थे यही कारण है कि १८५७ में जब भारत में पहली बार ब्रिटेन की सत्ता को चुनौती दी गई तो देशी राजे और जागीरदारों ने भी विद्रोहियों का साथ दिया। यह राजनैतिक चेतना की आरम्भिक अवस्था थी परन्तु ब्रिटिश विरोधी भावना के बीज अवश्य पड़ चुके थे, समय और परिस्थिति के अनुसार वे धीरे-धीरे विकसित हो गए।

१८५७ का विप्लव और राजस्थान

इस प्रकार राजस्थान मे व्याप्त अराजक स्थिति ने १६ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे राजपूताना के राज्यो को ब्रिटिश समर्थन प्राप्त करने के लिए बाध्य कर दिया। एक प्रकार से राजस्थान के सभी राज्य किसी न किसी रूप मे ईस्ट इडिया कपनी से सधि या समझौता कर चुके थे परतु इन सबके बावजूद उनके भातरिक गतिरोध समाप्त नही हुए। उत्तराधिकार का पश्न और विशेष अधिकार [illegible] प्रश्न पर जागीरदारो और राजाओ के मध्य सघर्ष बराबर चलता रहा। ईस्ट इडिया कपनी के द्वारा अनेक राज्यो मे सशस्त्र हस्तक्षेप भी किया गया परतु कुछ समय तक शाति और व्यवस्था के बाद स्थिति पुन बिगडती रही। इस प्रकार जब राजस्थान मे आतरिक अशाति और अव्यवस्था फैली हुई थी उसी समय भारत म भी ईस्ट इडिया कम्पनी के विरोध मे वातावरण बनता दिखाई दे रहा था।

जब भारत में १८५७ का विद्रोह फैला उस समय राजस्थान मे एजेन्ट गवर्नर जनरल लारेंस थे। साथ ही साथ विभिन्न राज्यो म ब्रिटन के रेजीडेन्ट भी नियुक्त किए जा चुके थे, उदाहरणत उदयपुर म कैप्टन सी० एल० शावर्स, जयपुर मे कैप्टन विलियम ईडन, जोधपुर म कैप्टन माक मसन, कोटा मे मेजर बर्टन और भरतपुर मे मेजर निक्सन थ। राजस्थान म मुख्यत चार सैनिक छावनिया थी जो नसीराबाद, नीमच, देवली और अजमेर म स्थित थी। नसीराबाद मे नैटिव होर्स फील्ड बैटरी नवर ६, पन्द्रहवीं और तीसवी बगाल नेटिव इन्फेन्टरी और फर्स्ट वोम्बे कैवेलरी नियुक्त थी। नीमच मे चौथी ट्रुप फर्स्ट ब्रिगेड बगाल नेटिव होर्स आर्टेलरी, फर्स्ट बगाल कैवेलरी, बहत्तरवीं

बंगाल इन्फेन्ट्री और मालवी इन्फेन्ट्री ग्वालियर नियुक्त थी। देवली में और कोटा में भी इसी प्रकार कुछ ब्रिटिश टुकड़ियाँ तैनात थीं। इनके अतिरिक्त एरनपुरा ब्यावर और मेरवाड़ा में भील टुकड़ियों के साथ-साथ फर्स्ट बंगाल केवेलरी भी नियुक्त थी। अजमेर में पन्द्रहवीं बंगाल नेटिव इन्फेन्ट्री और मेरवाड़ा बटालियन तैनात थी। इसी प्रकार जयपुर हाड़ौती, जोधपुर और नीमच में भी कुछ टुकड़ियां तैनात थीं लेकिन इतना स्पष्ट है कि विद्रोह के समय समूचे राजस्थान में एक भी यूरोपीय सिपाही तैनात नहीं था। यही कारण है कि जब राजस्थान में भी १८५७ के विद्रोह की आग फैली तो ब्रिटिश सरकार चिंतित हो उठी।

मेरठ और दिल्ली में सैनिक विद्रोह के समाचार राजस्थान में १६ मई, १८५७ को उस समय पहुंचे जबकि एजेन्ट गवर्नर जनरल लारेंस माउन्ट आबू में गर्मियों की छुट्टियां मना रहे थे। यह समाचार मिलते ही कि मेरठ और दिल्ली में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह हो गया है जनरल लारेंस ने भी राजस्थान में अनेक ऐसे आदेश जारी किए जिनमें कि यदि कभी राजस्थान में भी विद्रोह की आग फैल तो उसका सामना किया जा सके। २१ मई, १८५७ को एजेन्ट गवर्नर जनरल ने दीसा में यूरोपीय सेना को तत्काल नसीराबाद भेजे जाने का आदेश दिया। साथ ही साथ बम्बई सरकार से भी यह प्रार्थना की गई कि वह यूरोपीय सेना की कुछ टुकड़ी तत्काल राजस्थान को भेज दे। २३ मई १८५७ को एजेन्ट गवर्नर जनरल ने एक घोषणा प्रसारित की जिसमें राजस्थान के सभी राजाओं और प्रमुख जागीरदारों से यह अनुरोध किया गया कि वे अपने अपने क्षेत्रों में शान्ति बनाए रखेंगे और ब्रिटिश विद्रोहियों को पकड़ने में ब्रिटेन की सहायता करेंगे।

देशी राजाओं का ब्रिटेन को सक्रिय सहयोग

एजेन्ट गवर्नर जनरल के सहयोग की अपील पर राजस्थान के सभी राजाओं ने ब्रिटेन को सहायता और सहयोग का आश्वासन दिया। सिरोही के महाराव ने आशा प्रकट की कि दिल्ली का विद्रोह बहुत जल्द ही समाप्त हो जायगा इसी प्रकार जयपुर के महाराजा ने पोलिटिकल एजेंट कैप्टन ईडन को हर प्रकार की सहायता का वचन दिया यहां तक कि कैप्टन ईडन के नेतृत्व में पांच हजार ब्रिटिश सैनिकों को जयपुर क्षेत्र में से होकर मथुरा और गुड़गांव जाने तथा वहां पर नागरिक प्रशासन को स्थापित करने में मदद देने के लिए

अपनी सीमा का उपयोग करने की अनुमति दे दी। महाराजा अलवर ने भी दो हजार पांच सौ व्यक्तियों को भेजकर कैप्टन निक्सन की सहायता की। इसी प्रकार जोधपुर के महाराजा ने भी अपने २००० घुड़सवार और पदयात्री सेना व ६ तोपो को एजेन्ट गवर्नर जनरल की सहायता के लिए समर्पित कर दिया। साथ ही साथ महाराणा स्वरूपसिंह (उदयपुर) ने ब्रिटेन के समर्थन की स्पष्ट घोषणा की और जून १८५७ मे राज्य के जागीरदारो के नाम एक अपील प्रसारित की जिसमे यह अनुरोध किया गया कि वह ब्रिटेन की हर प्रकार से सहायता करे। यह अपील खास तौर से देवल, बागरा सलुम्बर बनोला और कनथाना के जागीरदारो से भी की गई। यही नहीं महाराणाओ ने अपनी समस्त सेना तात्कालिक पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टन सी० एल० शावर्स के अनुरोध पर छोड़ दी और २७ मई १८५७ को एक और विशेष अपील प्रसारित की जिसमे पुन यह अनुरोध किया गया था कि शावर्स के आदेशो को महाराणा के आदेश माने जाए और उसी के अनुरूप आचरण किया जाय। अक्टूबर १८५७ को महाराणा ने ओगना पनारवा जावास ऊ लोन और पानी आदि के मुखियाओ के नाम एक परवाना जारी किया जिसमे उन्हे निर्देश दिया गया था कि खेरवाडा और कोटरा मे ब्रिटेन की सेनाओ की हर सम्भव सहायता की जाय और पहाडी इलाको मे किसी भी प्रकार का विद्रोह न होने दिया जाय।

नसीराबाद मे विद्रोह

राजस्थान मे १८५७ के विद्रोह का सकेत नसीराबाद से प्रारम्भ हुआ। २८ मई १८५७ को शाम के ४ बजे नसीराबाद मे सनिकों ने विद्रोह कर दिया। ब्रिटेन की ओर से नसीराबाद स्थित सेनाओं को नि शस्त्र करने के प्रयास ने आग मे घी का काम किया। ऐसी अफवाहें भी फैल रही थी कि सैनिको को जो आटा दिया जाता है और जो कारतूस काम मे लेने के लिए दिए जाते हैं उसमे गऊ का मास मिलाया जाता है। २७ मई को यह भी समाचार फैला कि डीसा के योरोपीय सैनिकों की एक टुकडी नसीराबाद आ रही है जो वहा स्थित सैनिको का स्थान लेगी। इस समाचार ने ब्रिटिश विरोधी भावना को चरम सीमा पर पहुचा दिया। नसीराबाद की स्थिति बिगडने लगी। सैनिकों ने विद्रोह कर दिया परतु फर्स्ट रेजीमेन्ट बोम्बे लान्सर ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया और ब्रिटिश आदेश का पालन करते हुए उन पर गोली चलाई परन्तु लाइट एव ग्रनेडियर कपनी ने गोली चलाने से इन्कार कर

दिया। ब्रिगेडियर मेकन अपने योरोपियन साथियों के साथ पीछे हटने को बाध्य हुआ, साथ ही कर्नल पेनी जो कि कार्यवाहक कमान्डर थे—घटनास्थल पर ही मर गए। सम्भवत: इसका कारण उनका अस्वस्थ हो जाना है। दो अन्य ब्रिटिश अधिकारियों की भी मृत्यु हो गई और दो घायल हो गए, और इसके साथ ही नसीराबाद विप्लवकारियों के हाथों में चला गया। दूसरे दिन विप्लवकारियों ने नसीराबाद छावनी को नष्ट कर दिया और दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

लेफ्टीनेंट वाल्टर तथा लेफ्टीनेंट हेथकोट के नेतृत्व में लगभग एक हजार मेवाड़ के सैनिकों ने विप्लवकारियों का पीछा किया परन्तु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। सम्भवत: इसका कारण यह था कि मेवाड़ और मारवाड़ के जागीरदारों ने नसीराबाद के विप्लवकारियों को अपने प्रदेश में से आसानी से गुजर जाने दिया। यह तथ्य इस बात का संकेत था कि मेवाड़ और मारवाड़ की सहानुभूति विप्लवकारियों के साथ थी।

नीमच में विप्लव

राजस्थान में विप्लव का दूसरा स्थान नीमच बना, जहां ३ जून, १८५७ को क्रांति फूट पड़ी। २ जून को कर्नल एबोट ने हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को गंगा और कुरान की शपथ दिलाई थी कि वे ब्रिटिश शासन के प्रति वफादार रहेंगे, कर्नल एबोट ने स्वयं ने भी बाइबिल को हाथ में लेकर शपथ ली थी, जिससे कि वह अपने अधीन सिपाहियों का पूर्ण विश्वास प्राप्त कर सकें परन्तु जब ३ जून, १८५७ को नसीराबाद के विप्लव का समाचार नीमच पहुंचा तो उसी दिन रात्रि के ११ बजे वहां भी विप्लव हो गया। स्थल सेना ने समूची छावनी को घेर लिया और उसको आग लगा दी। यहां तक कि ब्रिगेडियर मेजर के बंगले तक को आग लगा दी गई। बंगलों पर तैनात सैनिकों ने विप्लवकारियों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया और कुछ समय बाद वे भी उनके साथ मिल गए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि २ स्त्रियां तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुईं और अनेक बच्चों को अग्नि की ज्वाला के भेंट कर दिया गया। ब्रिटिश स्त्री पुरुष और बच्चे जो लगभग संख्या में ४० थे विप्लवकारियों के द्वारा घेर लिए गए। यदि उदयपुर (मेवाड़) के सैनिक उचित समय पर सहायता के लिए न पहुंचे होते तो सम्भवत: उनका जीवन भी समाप्त हो जाता। ५ जून को विप्लवकारियों ने आगरा होते हुए देहली के

लिए प्रस्थान किया। उन्होने आगरा जेल मे बन्द सभी बंदियो को मुक्त कर दिया और सरकारी खजाने मे से एक लाख छब्बीस हजार नौ सौ रुपए लूटकर साथ ले चले, परतु आगरा का प्रमुख सदर बाजार अछूता रहा।

उदयपुर महाराणा द्वारा ब्रिटिश शरणार्थियों के प्रति सहानुभूति

जो योरोपीय विप्लवकारियो के हाथो बचकर सकुशल उदयपुर पहुच गए थ उनका महाराणा ने बहुत ही हार्दिक सत्कार किया। योरोपीय शरणार्थियो को पीछोला झील स्थित जग मदिर म शरण दो गई और उदयपुर के प्रधान गोकलचन्द मेहता को विशेषत उनकी देखभाल के लिए नियुक्त किया गया। तात्कालिक ब्रिटिश कप्तान एनेसले ने ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टन कप्तान सी० एल० शावर्स को अपनी रिपोर्ट भेजते हुए कहा था 'महाराणा ने व्यक्तिगत रूप स हमारी देखभाल म रुचि ली, उन्होने प्रत्येक योरोपीय बालक को स्वय अपने हाथ स दो दो सोने की मोहरें प्रदान की, सायकाल पुन यह बच्चे महाराणा की सेवा म उपस्थित किए गए जहा महाराणा ने पुन अपने और महाराणी के नाम पर दो दो स्वर्ण मुहरें और दी। वास्तव म महाराणा की दया और स्वागत सत्कार को भूला नही जा सकता।' ब्रिटिश सरकार ने महाराणा द्वारा दिए गए सरक्षण का विशेष रूप से "धन्यवाद' दिया।

देवली छावनी का नष्ट किया जाना

नीमच के विप्लवकारी देवली भी पहुच और उन्होने छावनी को आग लगा दी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि देवली छावनी म कोई भी ब्रिटिश सैनिक हताहत नही हुआ क्योकि छावनी को पहले ही खाली किया जा चुका था और वहा से ब्रिटिश अधिकारियो को मेवाड स्थित जहाजपुर कस्बे मे बसा दिया गया था। विप्लवकारियो न कोटा रेजीमेन्ट के ६० व्यक्तियो को देवली छावनी से अपने साथ चलन के लिए बाध्य किया परतु रास्ते मे ये सैनिक भाग निकलने मे सफल हो गए और कुछ दिनों पश्चात् वापिस देवली पहुच गए।

आसपास के अन्य स्थाना की स्थिति भी विस्फोटक होती जा रही थी। मालवा, मह्र सलुम्बर इत्यादि स्थानो पर भी विप्लवकारियो के आक्रमण बढते जा रहे थे। उदयपुर स्थित खेरवाडा और सलुम्बर की स्थिति इतनी अधिक नाजुक बन चुकी थी कि कैप्टन शावर्स के विचार म इन क्षेत्रों की रक्षा करना बहुत मुश्किल हो गया था।

अजमेर जेल में विद्रोह

इसी बीच ६ अगस्त को अजमेर स्थित केन्द्रीय कारागृह में कैदियों ने विद्रोह कर दिया और लगभग ५० कैदी जेल से भाग छूटे। इस घटना के बावजूद शहर पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और स्थिति सामान्य बनी रही। नगर पुलिस ने कैदियों का पीछा किया और उनमें से अधिकांश को मार डाला। इस सबमें से विशेष महत्वपूर्ण बात यह थी कि अजमेर नगर के मुसलमानों ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया और अपने आपको विप्लव से बिल्कुल दूर रखा।

नसीराबाद में पुनः विप्लव

१२ जून, १८५७ को दीसा से यूरोपीय सेनाओं की प्रथम टुकड़ी नसीराबाद पहुंची और १० जुलाई १८५७ को एजेन्ट गवर्नर जनरल के द्वारा इस टुकड़ी को नीमच भेज दिया गया। इस घटना ने नसीराबाद स्थित सैनिकों में पुनः असंतोष को जन्म दिया। १२ वीं बम्बई नेटिव इन्फेंटरी के सैनिक अत्यधिक उत्तेजित हो उठे, परन्तु उन्हें शीघ्र ही निःशस्त्र कर दिया गया। १० अगस्त, १८५७ को बम्बई केवेलरी के सैनिकों ने अपने कमाण्डर के आदेश को मानने से इन्कार कर दिया और अपने अन्य साथियों को भी अपना अनुसरण करने को कहा परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कठोर कदम उठाए। एक सैनिक को तत्काल गोली मार दी गई। पांच और सैनिकों को फांसी पर लटका दिया गया तथा शेष सभी भारतीय सैनिकों को निःशस्त्र कर दिया गया। इस प्रकार नसीराबाद में पुनः सुलगती हुई विप्लव की आग को तत्काल दबा दिया गया।

नीमच में पुनः विप्लव

१२ अगस्त, १८५७ को नीमच में द्वितीय केवेलरी के कमाण्डर कर्नल जेक्सन ने इस सूचना के आधार पर कि भारतीय सेना में विद्रोह होने वाला है और उनकी योजना समस्त यूरोपीय अधिकारियों की हत्या कर देने की है, यूरोपीय सैनिकों को बुला भेजा। इस घटना से नीमच स्थित भारतीय सैनिकों को उत्तेजित कर दिया और परिणामतः वहां पुनः क्रांति की ज्वालाएं धधकने लगीं। इस उत्तेजना में एक यूरोपीय सिपाही की हत्या कर दी गई। दो अन्य सिपाही घायल हुए और लेफ्टीनेन्ट लिनियर किसी यूरोपीय की बन्दूक से ही घायल हो गए। सैनिकों ने कर्नल जेक्सन के आदेश का पालन करने से इन्कार

कर दिया। यहां तक कि यूरोपीय अधिकारियों के मध्य भी आदेश दिए जाने सम्बन्धी वाद विवाद उठ खड़े हुए अतः यह निश्चय किया गया कि नीमच के विप्लवकारियों को दबाने के लिए और अधिक सैनिक बुलाए जाए। परन्तु इसी बीच उदयपुर के सैनिकों की सहायता से विप्लव को दबा दिया गया।

राव बावल का व्यवहार

इस सन्दर्भ में नीमच स्थित बावल के० राव का व्यवहार और उनकी भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण रही। ४ जून, १८५८ को नीमच के कार्यकारी अधीक्षक मिस्टर बर्टन ने बावल के० राव से भेंट की। मिस्टर बर्टन के अनुसार बावल के० राव का व्यवहार उनके प्रति बहुत ही अधिक अमैत्रीपूर्ण था। यहां तक कि राव ने यूरोपीय सैनिक अथवा यूरोपीय नागरिकों की रक्षा का भार भी लेने से इन्कार कर दिया। यद्यपि नीमच के विप्लव को कुचल दिया गया था परन्तु कुछ ही दूर स्थित मंदसौर में विप्लवकारी पुनः एकत्रित हो रहे थे और उनकी यह योजना थी कि मोहर्रम के तत्काल पश्चात् नीमच पर पुनः हमला किया जाय। मंदसौर के शहजादा भी विप्लवकारियों के साथ थे और नीमच पर आक्रमण करने में सहायता देने के लिए अपने स्तर पर सैनिकों की भर्ती कर रहे थे। ब्रिटिश सरकार के द्वारा इस विप्लव को कुचलने के लिए कठोरतम उपाय अपनाए गए। द्वितीय बम्बई कैवेलरी के ३ व्यक्तियों को ११ सितम्बर, १८५७ को फांसी के फंदे पर लटका दिया गया और अन्य सैनिकों को आदेश दिया कि वे इस घटना की साक्षी के रूप में परेड करें।

८ नवम्बर, १८५७ को विप्लवकारियों ने नीमच पर पुनः आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। लगभग चार घंटे तक ब्रिटिश सेनाओं ने इस विप्लवकारियों का सामना किया परन्तु उन्हें अन्ततः पीछे हटना पड़ा। अन्यथा यह निश्चित था कि ब्रिटेन की अधिकांश सेना को भारी क्षति पहुंचती। इसी बीच मंदसौर के शहजादे ने एक "परवाना" जारी किया जिसमें प्रत्येक हिंदू और मुसलमान से अपील की गई थी कि वह विप्लवकारियों का साथ दे और अंग्रेजों को भारत से निकालने में अपना योगदान दे। लगभग १५ दिन के नीमच के घेरे के बाद जब और ब्रिटिश कुमुक ब्रिटिश सहायता [illegible] लिए पहुंचे तो विप्लवकारियों को घेरा उठाना पड़ा। परन्तु उन्होंने हटते-हटते भी दो ब्रिटिश अधिकारियों को मार डाला और अनेकों को घायल कर दिया।

इसी बीच २१ अगस्त को माउन्ट आबू स्थित जोधपुर की सैनिक टुकड़ी ने क्रांति कर दी। साथ ही साथ उन्होंने यूरोपीय अधिकारियों पर आक्रमण किया जिसमें कैप्टन हाल, ए० लारेन्स तथा एजेन्ट गवर्नर जनरल के पुत्र गंभीर रूप से घायल हुए। विप्लवकारियों ने अपने साथ लूट हुए खजाने को लिया और वे एरनपुरा की तरफ रवाना हुए तत्पश्चात् उन्होंने एरनपुरा छावनी को भी नष्ट-भ्रष्ट किया और फिर अजमेर की तरफ बढ़ गए।

विप्लवकारी और आवा में उनकी गतिविधियाँ :

अगस्त, १८५७ में क्रांति की ज्वालाएं समस्त राज्य में फैलने लगीं। २१ अगस्त को एरिनपुरा स्थित जोधपुर सेनाओं ने विद्रोह कर दिया और उन्होंने अपने अधिकारियों के आदेश का पालन करने से इन्कार कर दिया। परिणामतः लैफ्टीनेंट कारमोलो को विप्लवकारियों के साथ चलने के लिए बाध्य होना पड़ा, यद्यपि तीन दिन पश्चात् विप्लवकारियों ने उसे रिहा कर दिया। तीन सैनिकों ने भी विप्लवकारियों का साथ दिया और ब्रिटिश शासन [redacted] साथ सहयोग करने से इन्कार कर दिया। विप्लवकारियों ने अनेक ब्रिटिश नागरिक एवं अनेक परिवारों को अपनी हिरासत में ले लिया यद्यपि कुछ समय पश्चात् उन्हें भी रिहा कर दिया। तत्पश्चात् आवा के ठाकुर कुशाल सिंह ने भी विप्लवकारियों को सहयोग देना प्रारम्भ किया, इसका मुख्य कारण यह था कि पिछले कुछ वर्षों से ठाकुर कुशालसिंह और जोधपुर महाराजा के आपसी संबंध तनावपूर्ण थे और वर्तमान परिस्थितियों में ठाकुर कुशालसिंह ने अवसर से लाभ उठाना चाहा।

८ सितम्बर, १८५७ को महाराजा जोधपुर की सेनाओं और विप्लवकारियों एवं आवा के ठाकुर की सशस्त्र सेनाओं के मध्य पाली के समीप संघर्ष हुआ, महाराजा जोधपुर की सेनाओं को न केवल पराजय का ही मुंह देखना पड़ा अपितु उनके अधिकांश अस्त्र-शस्त्र विप्लवकारियों के हाथ लगे। जोधपुर किले के किलेदार कमाण्डर अनारसिंह और महाराजा के अनेक विश्वासपात्र सहयोगी इस युद्ध में काम आए, यहां तक कि लैफ्टीनेंट हैटकोच जिसे कि राजस्थान में ब्रिटिश एजेन्ट गवर्नर जनरल लारेन्स ने भेजा था, बड़ी मुश्किल से अपना बचाव कर सका। उसकी समस्त सम्पत्ति विप्लवकारियों द्वारा लूट ली गई। इस गंभीर परिस्थितियों को देखते हुए स्वयं जनरल लारेन्स ने आवा की ओर कूच करने का निश्चय किया। उसने ब्यावर

क समीप सशस्त्र बटालियन तैयार कर ग्रौर ग्रावा की ग्रोर चल पड़ा। १८ सितम्बर को जनरल लारेन्स क नेतृत्व म ब्रिटिश सशस्त्र सेना ने ग्रावा पर ग्रसफल ग्राक्रमण किया विप्लवकारी सनिकों ने न केवल ग्राक्रमण को ही विफल किया ग्रपितु ग्रनक ब्रिटिश ग्रधिकारियों का जिनम जोधपुर स्थित ब्रिटिश पालिटिकल एजेन्ट मौक मेसन एव एक योरोपीय ग्रधिकारी भी शामिल था मार डाला साथ ही साथ जोधपुर सेना के ग्रनक सैनिक भी विप्लव कारियो के हाथ मारे गए ग्रौर व दी बना लिए गए। विप्लवकारियों न मौकमेसन का सर धड स ग्रलग करके ग्रावा के किले पर लटका दिया जो एक प्रकार स उनकी विजय का प्रतीक था। जनरल लारेन्स को पीछे हटना पड़ा ग्रौर ग्रावा म लगभग तीन मील दूर एक गाव म शरण लेनी पड़ी तदुपरात वह ग्रजमेर वापिस ग्राया। जनरल लारे स की पराजय को ब्रिटिश सरकार न बडी गभीरता म लिया इसका कारण यह था कि इस घटना का ग्रशुभ राजस्थान पर व्यापक प्रभाव पड सकता था। ग्रत ब्रिटिश सरकार ने ग्रादेश दिया कि हर कीमत पर ग्रावा ठाकुर को कुचल दिया जाना चाहिए। उधर दूसरी ग्रोर विप्लवकारियों न रिसालदार ग्रब्दुल ग्रली ग्रब्बास ग्रली सा शेख मोहम्मद बख्श ग्रौर हिंदू ग्रौर मुसलमान सिपाहियों में नाम पर मारवाड ग्रौर मेवाड की जनता स ग्रपील की कि वह उनकी हर सभव सहायता करे। ठाकुर कुशालसिंह न भी मेवाड के प्रमुख जागीरदार ठाकुर समर्दसिंह स ब्रिटेन क विरुद्ध सहायता देने का प्रस्ताव किया, ठाकुर समर्दसिंह न ग्रौर मारवाड के ग्रनक प्रमुख जागीरदारों ने चार हजार सैनिकों की सहायता का ग्राश्वासन दिया। ६ ग्रक्टूबर १८५७ को ग्रासोप के ठाकुर श्योनाथसिंह पुलनियावास के ठाकुर ग्रजीतसिंह बोगावा के ठाकुर जोधसिंह बाला के ठाकुर पर्मसिंह बसवाना के ठाकुर चांदसिंह तुलगिरी के ठाकुर जगतसिंह ने दिल्ली सम्राट से सहायता लन के लिए दिल्ली की ग्रोर प्रस्थान किया। ठाकुर समर्दसिंह न भी उपर्युक्त जागीरदारों का साथ दिया।

जनवरी १८५८ को ब्रिटिश सनिकों की सहायता करन क लिए बबई की सनिक टुकडी नसीराबाद पहुची। मार्ग म सिरोही क ठाकुर के ग्रधीन सेना के किले को नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया ग्रौर १६ जनवरी १८५८ को यह टुकडी ग्रावा पहुची। इस सना की सहायता करन क लिए जोधपुर के कार्यकारी ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट मेजर मोरीमेन भी ग्रावा पहुचे। उधर दूसरी ग्रोर कनल हाल्मस के नेतृत्व म बम्बई नेटिव इन्फेन्ट्री भी ग्रावा

पहुँची। तत्पश्चात् १६ जनवरी को ही कर्नल होम्स के नेतृत्व में आवा किले पर घेरा डाल दिया गया परन्तु २३ जनवरी, १८५८ को अंधकार और वर्षा व तूफान का फायदा उठाते हुए आवा विप्लवकारी बच निकले। ब्रिटिश सेनाओं के द्वारा विप्लवकारियों का पीछा किया गया जिन्होंने १८ विप्लवकारियों को मौत के घाट उतार दिया और ७ को हिरासत में ले लिया, दूसरी ओर, आवा गाँव में १२४ व्यक्तियों को बंदी बनाया गया, जिन्हें तत्काल गोलियों का निशाना बना दिया गया। साथ ही साथ आवा ठाकुर के निवास-स्थान को भी मिट्टी में मिला दिया गया और इस प्रकार २४ जनवरी, १८५८ को आवा पर ब्रिटिश सैनिकों का कब्जा हो गया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सैनिक कार्यवाही के दौरान अनेक निहत्थे नागरिकों की भी हत्या की गई। जिनके शव गलियों में पड़े दिखाई देते थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ब्रिटिश सेना को भी काफी क्षति पहुँची और उनके कम से कम दस सैनिक घायल हुए। ब्रिटिश सैनिकों ने आवा में भयंकर अत्याचार किए। भीरता, भीमालिया और मन्डीया गांवों को तहस-नहस कर डाला गया और इस प्रकार जनता में आतंक फैलाकर ब्रिटिश सैनिक नसीराबाद की ओर बढ़े।

कोटा स्थित ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट मेजर बर्टन की हत्या

१५ सितम्बर, १८५७ को मेजर बर्टन को ब्रिटिश पोलिटिकल एजेण्ट के रूप में कोटा जाने का आदेश मिला। तदनुसार कोटा महाराव के वकील मेजर बर्टन को लेने के लिए नीमच पहुँचे। ५ अक्तूबर को मेजर बर्टन अपने दो पुत्रों के साथ कोटा के लिए रवाना हुए। मेजर बर्टन की पत्नी, उनकी पुत्री और उनके तीन पुत्र नीमच में ही रह गए थे। १२ अक्तूबर को मेजर बर्टन अपने दोनों पुत्रों के साथ कोटा पहुँचे। उसी दिन दिल्ली का पतन हुआ और ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस अवसर पर महाराव कोटा ने तोपों की सलामी दी। दूसरे दिन कोटा महाराव ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट से मिलने उनके निवास-स्थान पर गए और उसी दिन शाम को पोलिटिकल एजन्ट अपने दोनों पुत्रों के साथ महाराव से मिलने आए। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपनी बातचीत के दौरान पोलिटिकल एजन्ट ने महाराव से अनुरोध किया कि वह अपने कुछ प्रमुख सहयोगियों को पदमुक्त करदें। परन्तु १५ अक्तूबर को कोटा महाराव की दो पलटनों ने ब्रिटेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मेजर बर्टन, उनके दोनों पुत्र एक असिस्टेन्ट

सर्जन और एक स्थानीय क्रिश्चियन डाक्टर को हत्या कर दी। यही नहीं मेजर बर्टन का सिर काट लिया गया और विप्लवकारी उसे अपने साथ लेते गए। ब्रिटिश सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। पाच महीने तक लगातार कोटा पर विप्लवकारियो का आधिपत्य रहा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि मेजर बर्टन की हत्या म कोटा महाराव का भी हाथ था और सभवत इसीलिए मेजर बर्टन को नीमच से वापिस बुलवाया गया था परतु इसके विपरीत ब्रिटिश एजेन्ट गवर्नर जनरल की रिपोर्ट के अनुसार कोटा महाराव को मेजर बर्टन सबधी आदेश-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया गया था। मेजर बर्टन की हत्या की जाच पडताल करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति भी की गई थी, जिसने अपनी रिपोर्ट मे कोटा महाराव को मेजर बर्टन की हत्या के लिए जिम्मेदार ठहराया था। सभवत यही कारण है कि एजेन्ट गवर्नर जनरल ने महाराव पर १५ लाख रुपय के जुर्माना करने की सिफारिश की थी, परतु इस सबके बावजूद महाराव को ब्रिटिश सरकार ने दोषमुक्त ठहराया। सभवत इसका कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार यह उचित नहीं समझती थी कि सार्वजनिक रूप से कोटा महाराव को विप्लवकारी घोषित किया जाय क्योकि इसका देश के अन्य राज्यो पर भी प्रभाव पड़ने की सभावना थी। उधर महाराव कोटा ने अपने आपको इस घटना से बिल्कुल अलग बताया उन्होने मेजर बर्टन की नृशस हत्या पर दु ख प्रकट करते हुए ब्रिटेन से क्षमा-याचना की। साथ ही साथ उन्होने ब्रिटेन से यह भी अनुरोध किया कि कोटा से विप्लवकारियो को हटाने मे ब्रिटिश सैनिक सहायता तुरत भेजी जाय। वास्तविकता यह थी कि कोटा पर पूर्णत विप्लवकारियों का नियत्रण था और कोटा महाराव एक प्रकार से अपने ही किले में बदी थे। अतत मार्च, १८५८ में मेजर जनरल रोबर्ट्स के नेतृत्व मे ५५०० सैनिको की एक टुकडी विप्लवकारियो का सफाया करने के लिए भेजी गई। २६ मार्च को नगर पर आक्रमण आरम्भ हुआ परतु विप्लवकारी बच निकले और उनका केवल एक सैनिक हरदयाल मारा गया। ब्रिटिश सैनिकों ने गोलाबारी की सहायता से नगर मे प्रवेश किया और समूचे नगर को धूल धूसरित कर दिया।

राजस्थान मे तात्या टोपे

सभवत राजस्थान मे विप्लवकारियों का इतिहास उस समय तक अछूता ही रहेगा जबतक कि राजस्थान में तात्या टोपे की गतिविधियों की

राधीशा म की साथ । २२ जून १८५८ को चाम्बी नपीमर स पराजित होने के पश्चात् तात्या टोपे राजस्थान की ओर मुड़ा । ऐसा विश्वास किया जाता है कि तात्या टोपे की सेना जिसमे लगभग ६००० विप्लवकारी ग्वालियर के और लगभग ४००० भील सैनिक थे । तात्या टोपे को आशा थी कि उसे जयपुर और हाड़ौती से आवश्यक सैनिक सहायता प्राप्त हो सकेगी और इसलिए उसने इन राज्यों को अपने दूत भी भेजे । तदनुसार वह जयपुर की ओर रवाना हुआ परन्तु उसके जयपुर पहुचने से पूर्व ही जनरल रोबर्टस जयपुर पहुच गया, परिणामत तात्या टोपे जयपुर पहुचने मे असमर्थ रहा । दूसरी ओर कर्नल होम्स तात्या का पीछा कर रहा था, ऐसी अवस्था मे तात्या टोपे ने दो अन्य विप्लवकारियो-बांदा के नवाब और रहीम अली खां के साथ टौंक पहुचने का निश्चय किया परन्तु टौंक के नवाब न तात्या को सहयोग देने से न केवल इन्कार ही किया बल्कि उसका सामना करने के लिए अपनी सेना भी भेज दी और भयभीत होकर अपने आपको किले मे बद भी कर दिया । लेकिन टौंक की सेनाओ ने तात्या टोपे की सेनाओं का सामना करने के बजाय विप्लवकारियो को सहयोग दिया । इन सबके बावजूद तात्या टोपे ने टौंक मे ही ठहरना उचित नही समझा, अत वह इन्दरगढ और माधोपुर होता हुआ बूंदी पहुचा, परन्तु उसे बूंदी महाराव से कोई सहायता नही मिली अत अब वह मेवाड़ की ओर रवाना हुआ । उसे आशा थी कि उदयपुर और सलुम्बर के सैनिक उसका समर्थन करेंगे परन्तु यहा भी तात्या टोपे को निराश होना पड़ा । कारण, ब्रिटिश अधिकारियो ने पहले ही आवश्यक कदम उठा लिए थे । अतत ९ अगस्त, १८५८ को कोठारिया नदी के किनारे पर जनरल रोबर्टस् और तात्या के मध्य सघर्ष हुआ । तात्या बच निकला परन्तु १४ अगस्त, १८५८ को बनास नदी के किनारे एक बार फिर मुठभेड हुई, इस सघर्ष के दौरान तात्या के लगभग ७०० व्यक्ति काम आए और उसकी ४ तोपें ब्रिटिश सैनिको के हाथ लगी ।

इस प्रकार राजस्थान मे तात्या टोपे को भारी असफलता का मुह देखना पड़ा अत वह चम्बल नदी को पार करके झालावाड की राजधानी झालरापाटन पहुचा । झालावाड की सेनाओं ने तात्या टोपे को सहयोग दिया यही कारण था कि झालावाड राजराना के अधिकांश अस्त्र-शस्त्र गोला बारूद और अनेक घोड़ें तात्या टोपे के हाथ लगे, साथ ही इन सैनिकों ने राजराना के महल को घेर लिया । तात्या टोपे ने राजस्थान से २५

लाख रुपए देने की माग की जिसमें से राजराना ने ५ लाख रुपए तुरत दे दिए और उसी रात को राजराना मह की ओर भाग गए। तत्पश्चात् तात्या टोपे इंदौर की ओर रवाना हुआ जहा उसकी मदद करने को होलकर तैयार था। लगभग दो महीने तक मध्य भारत में रहने और छोटा उदयपुर में ब्रिगेडियर पार्क के हाथों पराजित होने के पश्चात् तात्या टोपे पुन राजस्थान की ओर लौटा। १२ दिसम्बर, १८५८ को तात्या टोपे ने बांसवाड़ा पर आधिपत्य स्थापित कर लिया परन्तु मेजर लीन माउथ ने उसे वहा से भगा दिया। वहा से तात्या मेवाड़ पहुंचा, परन्तु यहाँ पर भी उसे मेजर रोक का सामना करना पड़ा। १३ जनवरी १८५६ को मध्य भारत के प्रमुख विप्लवकारी प्रिंस फिरोजशाह और उसके अनुयाइयों ने इन्दरगढ़ नामक स्थान पर तात्या टोपे की सेनाओं का साथ दिया। ब्रिटिश सैनिकों ने तात्या को घेरने का असफल प्रयत्न किया और तात्या दौसा (जयपुर) की ओर भाग गया। १६ जनवरी को ब्रिगेडियर शोवर्स ने दौसा में तात्या की सेनाओं पर आक्रमण किया परन्तु तात्या टोपे फिर बच निकला और फिर २१ जनवरी, १८५६ को सीकर जा पहुचा। कर्नल होलमस भी सीकर पहुचा और उसी रात उसने तात्या के सैनिकों पर जबरदस्त आक्रमण किया। विप्लवकारी सैनिक भाग खड़े हुए। इस पराजय के पश्चात् तात्या टोपे जगल की ओर भाग गया परन्तु नरवर के एक राजपूत जागीरदार मानसिंह के द्वारा उसके साथ विश्वासघात किया गया। ७ अप्रैल, १८५६ को मानसिंह ने तात्या टोपे को ब्रिटिश सैनिकों के हवाले कर दिया तत्पश्चात् १८ अप्रैल १८५६ को ब्रिटिश सरकार ने उसे फासी दे दी। सीकर के राव साहब को भी गिरफ्तार कर लिया गया और २० अगस्त, १८६२ को उन्हें भी फासी दे दी गई।

इस प्रकार १८५७ के विप्लव का राजस्थान पर भी प्रभाव पड़ा। सम्भवत इस पृष्ठभूमि म यह अधिक उपयुक्त होगा कि राजस्थान के प्रमुख राजाओं के दृष्टिकोण की भी विवेचना की जाय जिसस कि यह स्पष्ट हो सके कि भारत में किस सीमा तक ब्रिटिश राज का समर्थन कर रहे थे। वास्तविकता यह है कि राजस्थान के सभी प्रमुख राजाओं ने संगठित होकर ब्रिटिश साम्राज्य को बनाए रखना चाहा। इसका एकमात्र कारण यह था कि ये राजा लोग इतने शक्तिशाली नहीं थे कि अपना शासन अपने आप कर सकें। यही कारण था कि वे ब्रिटिश शासन के अंधे भक्त बन गए, क्योंकि

वह जानते थे कि भारत में ब्रिटिश शासन ही उनकी गद्दियों की रक्षा कर सकता है।

जयपुर

इस समय जयपुर में मुख्यतः दो दल कार्य कर रहे थे। जयपुर के महाराजा रामसिंह यदि ब्रिटेन की हर सम्भव सहायता करने के लिए तैयार थे तो जयपुर के दीवान रावल शिवसिंह और जयपुर की सेनाएं ब्रिटिश विरोधी थी। ऐसा भी कहा जाता है कि जयपुर दीवान रावल शिवसिंह ने महाराजा रामसिंह को परामर्श दिया था कि उन्हें ब्रिटेन और दिल्ली के सम्राट और ब्रिटेन के प्रति मित्रता का सदृश आचरण करना चाहिए। ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि १८५७ के विप्लव के समय जयपुर सेनाओं ने ब्रिटिश सेनाओं की सहायता नहीं की और उनके विरुद्ध क्रान्तिकारियों को उत्तेजित करने में सहयोग दिया। यहां तक कि विप्लव के दौरान कप्तान हार्डकासिल ने स्पष्ट कहा था कि जयपुर सेनाओं ने ब्रिटिश सैनिकों की कोई सहायता नहीं की है और इस प्रकार जयपुर के साथ सन्धि की गई शर्तों का उल्लंघन किया है। यही नहीं जयपुर के राज कर्मचारियों में भी ब्रिटिश विरोधी भावनाएं उग्ररूप लिये थी यही कारण है कि जैसे ही रावल शिवसिंह, नवाब विलायत अली खां, मियां उस्मान खां और सादुल्ला खां जैसे ही जयपुर पहुंचे वह गिरफ्तार कर लिया गया। उस्मान खां और सादुल्ला खां के मध्य जो ब्रिटिश विरोधी पत्र व्यवहार हुआ था उसकी ओर भी जयपुर महाराजा का ध्यान आकर्षित किया गया। उस्मान खां के घर की तलाशी ली गई और लगभग ७०० हथियार बरामद किए गए परिणामतः उस्मान खां और उसका साथी विलायत अली खां गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें विभिन्न किलों में बन्द कर दिया गया। उपर्युक्त विवेचन इस तथ्य का प्रमाण है कि यद्यपि जयपुर के महाराजा रामसिंह ब्रिटिश शासन के साथ सहानुभूति रखते थे परन्तु जहां तक जयपुर की सेनाओं और प्रशासनिक सेनाओं का सम्बन्ध है वह विरोधी थे और साथ ही महाराजा के भी विरोधी थे।

अलवर

अलवर के महाराजा बन्नेसिंह एक लम्बी बीमारी के पश्चात् जुलाई १८५७ में स्वर्गवासी हो गए और उनके पुत्र व उत्तराधिकारी शिवदान सिंह

तेरह वर्ष की आयु में ३० जुलाई १८५७ को अलवर की राजगद्दी पर बैठे। जैसे ही भारत में विप्लव होने की सूचना का समाचार अलवर पहुँचा वैसे ही अलवर में भी ब्रिटिश विरोधी भावनाएं तेजी के साथ फैलने लगी। जयपुर के समान ही अलवर में भी दो प्रकार की शक्तियां काम कर रही थी एक ब्रिटिश समर्थक और दूसरी ब्रिटिश विरोधी ब्रिटिश समर्थक सेनाओं का नेतृत्व जहां महाराजा अलवर कर रहे थे वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश विरोधी सैनिकों का साथ अलवर के प्रशासनिक अधिकारी और सेनाएं कर रही थीं।

भरतपुर

आगरा के अत्यधिक निकट होने के कारण भरतपुर विप्लवकारियों की गतिविधि से अपने आपको अलग नहीं रख सका। २८ मई १८५७ को मेजर मोरीसन ने भरतपुर रेजीडेन्सी का कार्यभार संभाला। ३१ मई १८५७ को भरतपुर सेनाओं ने भी विप्लवकारियों का साथ देने का निश्चय किया। भरतपुर के अधिकारियों ने मेजर मोरीसन को यह स्पष्ट कह दिया कि उन्हें यदि अपनी सुरक्षा करनी है तो भरतपुर राज्य से तत्काल चला जाना चाहिए क्योंकि यह संभव है कि भरतपुर के सैनिक कहीं उन पर आक्रमण न कर दें। साथ ही भरतपुर [redacted] अधिकारियों के द्वारा यह भी कहा गया कि भरतपुर में मेजर मोरीसन की उपस्थिति नीमच के विप्लवकारियों को भरतपुर पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित कर सकती है अतः यह उचित होगा मेजर मोरीसन भरतपुर छोड़कर आगरा चले जाएं। मेजर मोरीसन ने इस परामर्श को स्वीकार कर लिया और वह आगरा आ गया लेकिन जब ५ जुलाई १८५७ को आगरा के निकट ब्रिटिश सैनिकों के साथ विप्लवकारियों का संघर्ष हुआ और ब्रिटिश सेना को आगरा के किले में बंद कर दिया गया तो मेजर मोरीसन को स्थिति की गम्भीरता का आभास हुआ। उन्होंने अपना कार्यभार तात्कालिक अवयस्क महाराजा गुलाबसिंह के संरक्षक को सौंप दिया और स्वयं आगरा चले गए। यह घटना इस बात का प्रतीक है कि जोधपुर की सेनाओं और प्रशासनिक अधिकारियों में ब्रिटिश विरोधी भावनाएं चरम सीमा पर थी और वह हर सम्भव अवसर पर अपना ब्रिटिश विरोधी दृष्टिकोण बता देना चाहते थे

बीकानेर

सम्भवतः सभी देशी राजाओं में बीकानेर के महाराजा ब्रिटेन को हर

संभव सहायता देने में सबसे आगे थे। १८५७ के विप्लव को दबाने में महाराजा बीकानेर ने व्यक्तिगत दिलचस्पी दिखाई, उन्होंने स्वयं अनेक स्थानों पर सैनिकों का नेतृत्व करते हुए विप्लवकारियों को कुचलने में योगदान दिया। विप्लवकारियों का सबसे अधिक दबाव सीमावर्ती प्रदेश हिसार और हांसी पर था। महाराजा बीकानेर ने १७०० सैनिकों की टुकड़ी हिसार के लिए और लगभग १००० सैनिक एवं दो तोपें हांसी की सहायता के लिए भेजी। महाराजा के इस अभूतपूर्व योगदान की ब्रिटिश सरकार ने प्रशंसा की और उनकी सेवाओं के फलस्वरूप हिसार जिले के ४५ ग्राम महाराजा को भेंट स्वरूप प्रदान किए गए। महाराजा ने जनता के नाम भी एक हुक्मनामा जारी किया, जिसमें यह घोषित की गई थी कि सभी व्यक्ति और खासतौर से मुखेदार, रिसालदार, अधिकारी और जमादार किसी भी रूप में विप्लवकारियों की सहायता न करें और बिना शर्त ब्रिटिश सेना के सम्मुख आत्म समर्पण कर दें।

धौलपुर :

धौलपुर के महाराजा राणा भगवतसिंह जी ने भी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को मजबूत बनाने में सक्रिय योगदान दिया। यहां तक कि महाराजा ने अपनी सेना की एक विशेष टुकड़ी मथुरा भी भेजी जहां पर कि विप्लव होने की अधिक संभावना थी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ब्रिटिश शरणार्थी ग्वालियर से भागकर धौलपुर की ओर आ रहे थे। महाराजा धौलपुर के द्वारा इन सभी शरणार्थियों का आगरा में महाराजा की तरफ से भावभीना स्वागत किया गया। परन्तु इसके विपरीत धौलपुर के सैनिक और सरदार विप्लवकारियों के साथ सहानुभूति रखते थे यहां तक कि महाराजा के अधिकांश मुख्य अधिकारी विप्लवकारियों के साथ मिल चुके थे और व्यावहारिक दृष्टि से महाराजा की सत्ता केवल नाममात्र की ही रह गई थी। यहां तक कि आगरा से आने वाले विप्लवकारियों ने महाराजा राणा को धौलपुर में ही इस बात के लिए बाध्य किया कि वह उनकी मांगों को स्वीकार कर लें, अन्यथा महाराजा राणा का जीवन खतरे में पड़ जायगा। राव रामचन्द्र और हीरालाल के नेतृत्व में लगभग १००० विप्लवकारियों ने अधिकांश अस्त्र शस्त्र और गोला बारूद को अपने कब्जे में ले लिया और वे आगरा की ओर वापिस चल पड़े। इसी बीच इन विप्लवकारियों का ब्रिटिश सैनिकों से सामना हुआ और उनके अधिकांश अस्त्र-शस्त्र ब्रिटिशों के कब्जे में चले गए। महाराजा

राणा की सहायता के लिए पजाब पटियाला और उत्तर पश्चिम सीमा प्रात स लगभग २००० सिक्ख सैनिको की एक टुकडी ४ तोपो के साथ धौलपुर भेजी गयी तब वही जाकर महाराज की सत्ता पुन स्थापित हो सकी।

इसी प्रकार करौली टोंक और भालावाड के महाराव ने भी भारत में १८५७ के विप्लव को दबाने मे ब्रिटेन की हर समय सहायता की लगभग राजस्थान के सभी देशी नरेशो ने तन मन धन से भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य को बनाए रखने मे अपना सक्रिय योगदान दिया। परिणाम यह हुआ कि भारत मे ब्रिटेन के विरुद्ध इस प्रथम विप्लव को सफलता पूर्वक कुचल दिया गया। ब्रिटिश शासको ने इस विप्लव को कुचलने मे कुछ न उठा रखा। यहा तक ब्रिटिश लेखक के (Kayes) तक ने स्वीकार किया है कि १८५७ के विप्लव को दबाने के लिए ब्रिटिश अधिकारियों के द्वारा जो नृशस हत्याकाड किया गया है, उसके सबध मे मैं एक शब्द भी लिखना नही चाहता जिससे कि यह विषय विश्व के सम्मुख अधिक समय तक जीवित न रहे। नसीराबाद नीमच आवा और कोटा म विप्लवकारियो को कुचलने मे जिन बबर साधनो का सहारा लिया गया और जिस बेरहमी और निर्दयता के साथ उनके परिवार के अन्य सदस्यो को मौत के घाट उतारा गया उसे भुलाया नहीं जा सकता। विप्लवकारियो की सम्पत्ति भी लूट ली गई और इन घटनाओ की चरम इतिश्री तो तब हुई जब ब्रिटिश सरकार के द्वारा उन सैनिक अधिकारियो को सम्मानित किया जिन्होंने सावजनिक सम्पत्ति को जी भर के लूटा था।

क्या १८५७ का विप्लव भारतीय स्वाधीनता का प्रथम सग्राम कहा जा सकता है ?

१८५७ के इस विप्लव को किस नाम से पुकारा जाय अर्थात् क्या इसे सैनिक विद्रोह मात्र की सज्ञा दी जाय अथवा भारतीय स्वतत्रता का प्रथम सग्राम कहा जाय इस सबध मे विद्वानो मे गभीर मतभेद है। जहा तक राजस्थान म घटित घटनाओ का सबध है यह स्पष्ट है कि इस क्रांति म भाग लेने वाले नागरिको की सख्या अत्यन्त ही सीमित थी और अधिकांश जनता उदासीन रही। वे व्यक्ति जिन्होने विप्लवकारियो का साथ दिया वास्तव मे असतुष्ट ठाकुर और जागीरदार थे जो किसी न किसी बात पर अपने महाराजा से अप्रसन्न थे। सामान्य नागरिक स्पष्ट रूप म बिल्कुल अलग रहा। अत व्यापक समथन के अभाव म इसे राष्ट्रीय जन विद्रोह की सज्ञा देना सभवत कठिन होगा।

जहां तक आवा, गूलर, आसोप और गनुम्बर के ठाकुरों का संबध है, यद्यपि उन्होंने विप्लवकारियों का सहयोग अवश्य किया परंतु वह राष्ट्रीय भावना से प्रेरित नहीं थे। वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए विप्लवकारियों को सहयोग दे रहे थे अन्यथा वे ब्रिटिश सत्ता से असन्तुष्ट नहीं थे। यह तो केवल एक अवसर की बात थी कि विप्लवकारी एरनपुरा से आवा होते हुए नारनौल जा रहे थे, और इसी बीच आवा के ठाकुर कुशालसिंह ने उनका साथ दिया। वास्तव में यह कोई पूर्व नियोजित कार्यक्रम नहीं था। जहां तक मन्दसौर के शहजादा फिरोजशाह और कोटा के मेहराब खां के द्वारा विप्लवकारियों को नेतृत्व प्रदान करने का संबध है वास्तव में वे राष्ट्रीय भावना से अनुप्रेरित नहीं थे, वे तो केवल धर्म के नाम पर दिल्ली सम्राट के पक्ष में लड़ने के लिए तैयार हुए थे।

दुर्भाग्य से राजस्थान के राजा महाराजाओं ने ब्रिटेन की हर संभव सहायता की अतः जो भी कुछ थोड़े बहुत ब्रिटिश विरोधी भावनाएं थी वह आसानी से कुचल दी गई। राष्ट्रीय भावना और देश प्रेम की सजगता जो पाश्चात्य जगत में स्वाधीनता संग्राम की आधारशिला रही है दुर्भाग्य से राजस्थान में परिलक्षित नहीं थी। वास्तव में ब्रिटिश विरोधी दृश्य कुछ इने गिने व्यक्तियों का कार्य था परंतु धीरे धीरे भारत में देश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना विकसित होने लगी भारतीय नागरिक भी यह समझने लगे कि स्वतंत्रता त्याग चाहती है इसी भावना ने आगे चलकर राजस्थान में वीर क्रान्तिकारियों जैसे अर्जुनलाल सेठी, विजयसिंह पथिक और राव गोपालसिंह खरवा को जन्म दिया, जिन्होंने अपनी जान हथेली पर रखकर राजस्थान के मस्तिष्क को ऊंचा उठाया।

२

सुधारों का युग और राजनैतिक चेतना का विकास

यद्यपि १८५७ का विप्लव ब्रिटिश सरकार के द्वारा सफलतापूर्वक कुचल दिया गया तथापि ब्रिटिश सरकार इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यदि उसे भारत मे अपना साम्राज्य बनाये रखना है तो भारत मे इंडिया कपनी के शासन के स्थान पर उसका स्वय का प्रत्यक्ष नियन्त्रण रहना चाहिए। तदनुसार २ अगस्त, १८५८ को ब्रिटिश ससद के द्वारा एक अधिनियम पारित किया गया, जिसके अनुसार भारत मे ईस्ट इंडिया कपनी का शासन समाप्त हुआ और ब्रिटेन के सम्राट भी घोषित किये गए। १ नवम्बर १८५८ को इलाहाबाद में एक दरबार आयोजित किया गया जहा महारानी विक्टोरिया की घोषणा भारत के प्रथम गवर्नर और वाईसराय लार्ड कैनिंग के द्वारा पढकर सुनाई गई। महारानी की इस घोषणा के द्वारा ईस्ट इंडिया कपनी के साथ की गई सभी सन्धियो को पुष्ट किया गया और भारत के देशी राज्य व महाराजाओं को यह विश्वास दिलाया गया कि उनके सभी अधिकार रक्षित किए जाएगे और सभी रीति रिवाज और परपराओ का पालन किया जायगा। घोषणा मे यह भी कहा गया कि अब भविष्य मे ब्रिटेन की नीति धर्म निरपेक्षता और निष्पक्षता पर आधारित होगी। वास्तव मे महारानी विक्टोरिया की इस घोषणा के परिणाम-स्वरूप भारत के देशी राजा महाराजा पूर्णरूप से अधीन बन गए।

राजस्थान के राजा और महाराजाओं द्वारा महारानी विक्टोरिया की घोषणा का स्वागत

राजस्थान के सभी राजा और महाराजाओं के द्वारा एक स्वर से महारानी विक्टोरिया का उत्साहवर्धक स्वागत किया गया जो इस बात का प्रमाण था कि यह राजे महाराजे हर कीमत पर अपनी गद्दीयां बनाए रखना चाहते थे। महारानी के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रकट करने के लिए राजस्थान के अनेक राज्यो मे विभिन्न समारोह आयोजित किए गए, उदाहरणार्थ इस अवसर पर मेवाड़ मे सार्वजनिक स्थानों पर रोशनी की गई और आतिशबाजी का प्रदर्शन किया गया। इसी प्रकार यूरोपीय सैनिकों को रात्रि भोज दिया गया और राज्य के सैनिको के मध्य मिठाई बांटी गई। तत्पश्चात् स्वास्थ्य की कामना करते हुए उनके प्रति आभार प्रकट किया। महाराणा उदयपुर के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्ञी को एक खरीता भी भेजा गया जिसमे इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की गई थी कि भारत मे ब्रिटिश सम्राट का शासन स्थापित किया गया है और राजा और महाराजाओं को प्रत्यक्ष संरक्षण प्रदान किया गया है। जोधपुर, नीमच और प्रतापगढ मे भी विभिन्न समारोह आयोजित किए जाकर राजा महाराजाओं ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की, नीमच मे ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट को सलामी दी गई और रात्रि के समय आतिशबाजी का प्रदर्शन किया गया।

साम्राज्ञी की घोषणा का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का राज्यो की प्रशासनिक व्यवस्था पर सीधा असर पड़ा। ब्रिटेन के साथ अनेक समझौते हुए जिनमे नमक, रेलवे, मुद्रा, डाक, और निष्कमण सन्धियां प्रमुख थी। इस प्रकार ब्रिटेन की नीति मे भी परिवर्तन हुआ और अब भारतीय राजे महाराजे पूर्णत ब्रिटेन के नियन्त्रण मे चले गए। सचार-साधनों और रेल-सुविधा के विस्तार का परिणाम यह हुआ कि देशी राज्यो की आर्थिक व्यवस्था व्यावहारिक दृष्टि से ब्रिटिश सत्ता के अधीन हो गई। यही कारण है कि अब ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट के द्वारा राजस्थान के राजे महाराजाओं को यह परामर्श दिया गया कि वे भी अपने-अपने राज्यो मे प्रशासनिक सामाजिक और आर्थिक सुधार लागू करें और दिन प्रतिदिन के शासन-कार्य मे व्यक्तिगत रूप से रुचि लें। इसका एक परिणाम यह हुआ कि अब ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट देशी राजे महाराजाओं के आन्तरिक कार्यों मे भी हस्तक्षेप करने लगे। परिणामत कुछ राज्यो मे इसकी गंभीर प्रतिक्रियाएं

हुई। सुविधा की दृष्टि से यह अधिक उपयुक्त होगा कि यदि राजस्थान के कुछ प्रमुख राज्यों का इस सन्दर्भ में विवेचन किया जाय।

मेवाड़ (उदयपुर) और सुधार

१६ नवम्बर १८६१ को महाराणा स्वरूपसिंह की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ का समूचा प्रशासन भ्रष्टाचारी हो उठा, महाराणा के उत्तराधिकारी राणा शम्भूसिंह अभी अवयस्क थे, अतः राज्य का प्रशासन चलाने के लिए ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट के द्वारा एक परिषद् नियुक्त की गई, परन्तु वह अधिक समय तक सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकी। इसलिए ११ अगस्त १८६३ को तात्कालिक ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल ईडन ने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार मेवाड़ का समूचा प्रशासन पोलिटिकल एजेन्ट ने संभाल लिया।

उपर्युक्त आदेश की प्रतिक्रिया बड़ी गंभीर हुई। इस आदेश ने मेवाड़ के नागरिकों और जागीरदारों में रोष की एक लहर फैला दी और एक तनाव-पूर्ण स्थिति बन गई। दशहरा उत्सव का त्योहार समीप था, ब्रिटिश पोलिटिकल एजन्ट को भय था कि कहीं इस अवसर पर विशेष गड़बड़ी न हो जाय अतः उसने अधिक संख्या में ब्रिटिश सैनिकों को भेजने का अनुरोध किया, परन्तु इस सबके बावजूद दशहरे के दिन यद्यपि कोई अभद्र घटना तो नहीं घटी परन्तु राज्य के जागीरदारों के द्वारा ब्रिटिश सरकार को एक स्मरण पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें यह मांग की गई थी कि मेवाड़ राज्य का प्रशासन पांच व्यक्तियों की परामर्शदात्री समिति के द्वारा चलाया जाय और सती होने से संबंधित होने वाली घटनाओं पर किसी भी प्रकार का जुर्माना न लगाया जाय तथा मेवाड़ में कस्टम ड्यूटी में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जाय। वास्तव में इस समय मेवाड़ का शासन अत्यधिक भ्रष्ट और असंगठित था। वहां न्याय के सिद्धान्त का कोई अस्तित्व नहीं था और शिशुओं का खरीदना और बेचा जाना एक सामान्य बात थी। अभियुक्तों को अत्यंत बर्बरतापूर्वक दंड दिए जाते थे और सजा देते समय कानून को कोई महत्व नहीं दिया जाता था। ऐसी अवस्था में पोलिटिकल एजेंट ईडन ने इन समस्त कुप्रथाओं को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रशासन और न्यायालय ब्रिटिश अधिकारियों को सौंप दिये। राजस्व एकत्रित करने की पद्धति में भी परिवर्तन किया गया परिणाम यह हुआ कि बहुत ही कम समय में राज्य की आय २४ लाख ७५

हजार प्रतिवर्ष तक बढ़ गई, जिसमें से ३ लाख रुपये प्रतिवर्ष की राज्य को बचत भी हुई।

इसी प्रकार कुछ सामाजिक सुधार भी लागू किए गए। पहली बार एक राजकीय विद्यालय की, जिसे शम्भूरत्न पाठशाला कहा जाता है—स्थापना हुई साथ ही एक राजकीय अस्पताल की भी स्थापना की गई, जिस पर एक लाख रुपया खर्च किए गए राजकीय कारागृह में बन्दियों के साथ किए जाने वाले व्यवहार में भी सुधार किया गया और नागरिकों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा के लिए शहर में शस्त्र सैनिक भी तैयार किए गए। नगर की स्वच्छता की ओर भी ध्यान दिया गया और मंदिरों की देखभाल एवं प्राकृतिक विपदाओं जैसे अकाल, बाढ़ आदि के समय सहायता किए जाने के लिए एक अलग विभाग की स्थापना की गई। स्त्रियों और बच्चों का क्रय-विक्रय करना, बेगार लिया जाना और सती प्रथा को एक आदेश जारी करके समाप्त घोषित कर दिया गया। सड़कों का भी विकास किया गया और उदयपुर को सड़क मार्ग के द्वारा नीमच और खेरवाड़ा से जोड़ दिया गया।

उपर्युक्त सुधारों को राज्य के जागीरदारों, अधिकारियों और जनता ने संदेहास्पद दृष्टि से देखा, उनका विश्वास था कि इस प्रकार के सुधार उनके रीति-रिवाज और परम्पराओं का उल्लंघन करते थे और यह उनके धार्मिक कार्यों में खुला हस्तक्षेप था। इन सुधारों के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के लिए समूचे उदयपुर में हड़ताल और प्रदर्शन आयोजित किए गए। इसी समय (२३ दिसम्बर, १८६३) ब्रिटिश सरकार के द्वारा एक आदेश जारी किया गया, जिसमें यह कहा गया था कि धान (स्वामी भक्ति की शपथ) लेने की प्रथा को समाप्त किया जाता है और यदि भविष्य में कोई भी व्यक्ति किसी भी दूसरे को 'धान' दिलाएगा तो वह दंड का भागी होगा। इस घोषणा ने समूचे उदयपुर शहर में एक तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न करदी। जनता, राज्यकीय अधिकारियों और महाराणा तक ने इस प्रकार की घोषणा का विरोध किया। विरोध प्रकट करने के लिए ३० मार्च, १८६४ को समूचे शहर में हड़ताल आयोजित की गई और नगर-सेठ चम्पालाल के नेतृत्व में लगभग ३००० व्यक्तियों ने पोलिटिकल एजेंट ईडन के निवास स्थान के सामने प्रदर्शन किया। प्रदर्शनकारियों की मुख्य मांग यह थी कि धान की प्रथा को पुनः शुरू किया जाय, बच्चों व स्त्रियों का क्रय विक्रय जारी रहने दिया जाय और

व्यापारियों को पुलिस परेशान न करे। प्रदर्शनकारियों की यह भी मांग थी कि दीवानी और फौजदारी मुकदमो की सुनवाई करते समय नगर के प्रमुख व्यक्तियों को न्यायाधीश के रूप म प्राचीन परम्पराओ के अनुसार कार्य करने की अनुमति दी जाय। पोलिटिकल एजेंट ने प्रदर्शनकारियो के समुख सरकार की नीति को स्पष्ट किया, परतु प्रदर्शनकारी हिंसक हो उठे और उन्होने पोलिटिकल एजेंट को न केवल गालियां ही दी बल्कि उस पर जूते और पत्थर भी फेंके। परिणामत सशस्त्र सैनिको ने शक्ति का इस्तेमाल करके प्रदर्शनकारियो को तितर-बितर कर दिया। तब प्रदर्शनकारी सहेलियो की बाडी की ओर रवाना हुए और उन्होने एजेंट गवर्नर जनरल के समुख अपनी कठिनाइया रखी। अतत एजेंट गवर्नर जनरल ने उनकी कठिनाइयो को दूर करने का आश्वासन दिया और तब कही जाकर वातावरण शात हुआ।

राज्य के प्रशासन को सुधारने के लिए १८७० मे कुछ और सुधार लागू किए गए। शारीरिक यातना देने के स्थान पर जुर्माना और कारावास की सजा देने की पद्धति आरम्भ की गई। समूचे मेवाड को अनेक जिलो मे विभाजित किया गया, सेना का पुनर्गठन किया गया और रेलवे लाइन भी बिछाई गई। इसी बीच महाराणा शम्भूसिंह की मृत्यु हो गई, परतु उनके उत्तराधिकारी महाराणा सज्जनसिंह (१८७४–१८८४) ने सुधार जारी रखे और १० मार्च, १८७७ को उन्होंने एक नई राज्य परिषद् इजलास खास की स्थापना की। उपर्युक्त सुधारो के विरुद्ध एक बार पुन उदयपुर के व्यापारियो के द्वारा आदोलन आरम्भ किया गया। समूचे शहर मे हडताल रखी गई, परतु इस बार महाराणा ने सख्ती के साथ सामना किया। ११ फरवरी, १८७८ को सेठ चम्पालाल और चार अन्य प्रमुख व्यापारियो को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया महाराणा ने धमकी दी कि यदि हडताल तत्काल समाप्त नही की गई तो उनके विरुद्ध और अधिक कठोर कार्यवाही की जायगी, परिणामत हडताल वापिस ले ली गई।

जाट आदोलन

महाराणा फतहसिंह के अवयस्क शासन-काल म नई भू राजस्व व्यवस्था के विरुद्ध एक आदोलन आरम्भ किया गया। वास्तव मे इस प्रकार के आदोलन को प्रोत्साहित करने वाले उदयपुर के महाजन, राज्य अधिकारी सलूम्बर के जागीरदार थे। २२ जून १८८० को रश्मि परगणा स्थित मात्री कुण्डिया नामक स्थान पर हजारो जाट किसानों ने जबर्दस्त प्रदर्शन किया

और यह मांग की कि वह उस समय तक अपनी भूमियों को नहीं जोतेंगे अथवा राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारी को उस समय तक कोई सहयोग नहीं देंगे जबतक कि उनकी मांगे महाराणा उदयपुर के सम्मुख प्रस्तुत नहीं की जाती और उन्हें दूर नहीं कर दिया जाता। १८ जुलाई १८८० को लगभग २५० किसानों का एक प्रतिनिधि मण्डल जिसमें कुछ महाजन भी सम्मिलित थे, महाराजा उदयपुर से मिले, महाराणा ने आंदोलनकारियों को विश्वास दिलाया कि जो सुधार लागू किए गए हैं वे उनके ही हित में हैं, और उनके अधिकारों का हनन नहीं होगा। अतः जुलाई माह समाप्त होते होते यह आंदोलन भी समाप्त हो गया।

परन्तु इतना स्पष्ट है कि उदयपुर में सुधारों को लागू करने के नाम पर राज्य के आंतरिक कार्य में ब्रिटेन का हस्तक्षेप दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। इस ब्रिटिश-हस्तक्षेप को स्वयं महाराणा ने भी अच्छा नहीं समझा अतः अनेक विषयों पर महाराणा और ब्रिटिश रेजीडेन्ट के मध्य मतभेद उत्पन्न होने लगे। परिणामतः राज्य में दो दल बन गए, जिनमें से एक महाराणा का समर्थन करता था तो दूसरा ब्रिटिश रेजीडेन्ट का।

बीकानेर में सुधार :

महाराजा सरदारसिंह (१८५१–१८७२) के शासन-काल में राज्य की प्रशासनिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति अत्यंत ही दयनीय हो उठी। राज्य के सभी विभागों में भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था, यहां तक कि राज्य के दीवान पंडित मनफूल पर भी महाराणा का कोई विश्वास नहीं रहा था। साथ ही साथ राज्य के जागीरदार भी तात्कालिक प्रशासनिक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठा रहे थे। परिणामतः ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टन ब्रुक फ्रेड के सुझावानुसार महाराजा को राज्य-कार्य में परामर्श देने के लिए एक पांच सदस्यीय परिषद् की स्थापना की गई, जिसमें राज्य के दीवान मनफूल को भी परिषद् के अध्यक्ष के रूप में सम्मिलित किया गया। परिषद् का मुख्य कार्य महाराजा को प्रशासनिक कार्यों में परामर्श देना था, यद्यपि परिषद् के परामर्श को मानने के लिए महाराजा बाध्य नहीं थे तथापि महाराजा ने आश्वासन दिया कि वे परिषद् के परामर्श को मानते रहेंगे और राज्य-कार्य में सीधा हस्तक्षेप नहीं करेंगे। परन्तु महाराजा ने इस आश्वासन का निर्वाह नहीं किया और व्यवहार में अपने एक अन्य विश्वासपात्र अधिकारी

बख्शीराम को प्रशासन-व्यवस्था सौंप दी। परिणामतः समूचे राज्य में एक अराजक स्थिति उत्पन्न हो गई।

१८८३ में महाराजा डूंगरसिंह के शासनकाल में राज्य के जागीरदारों से रेख (जागीरदारों से उगाया जाने वाला कर) नामक कर की वसूली पर कई बार संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई और ब्रिटिश सैनिकों की सहायता से ही स्थिति पर काबू पाया जा सका। इस प्रकार राज्य की स्थिति को देखते हुए विभिन्न सुधारों का लागू किया जाना अत्यंत आवश्यक बन गया।

१८६६ में बीकानेर राज्य और ब्रिटिश सरकार के मध्य प्रत्यावर्तन संधि हुई जिसके अनुसार यदि कोई अपराधी ब्रिटिश राज्य में शरण लेगा तो उसे राज्य सरकार ब्रिटिश सरकार के सुपुर्द करने के लिए बाध्य होगी। इसी प्रकार १८७६ में बीकानेर राज्य और ब्रिटिश सरकार के मध्य एक नमक समझौता हुआ जिसके अनुसार ब्रिटिश सरकार को भेजे जाने वाले नमक पर लगाई जाने वाली चुंगी को समाप्त कर दिया। साथ ही साथ राज्य से भांग, गांजा, स्प्रिट और अफीम के बाहर भेजे जाने पर रोक लगा दी गई। इसकी एवज में ब्रिटिश सरकार ने ६००० रुपये प्रति वर्ष और २०,००० मन नमक राज्य को देना निश्चित किया। वास्तव में इस संधी का परिणाम यह हुआ कि राज्य ने नमक को तैयार करने के अपने अधिकार को समाप्त कर दिया। इसी प्रकार १८८६ में रेल, मुद्रा और डाक से संबंधित समझौते हुए और इस प्रकार राज्य में विभिन्न स्तरों पर सुधार लागू किए गए।

जोधपुर में सुधार

२६ दिसम्बर, १८६८ को ब्रिटिश एजेन्ट गवर्नर जनरल के सुझाव पर राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को चलाने के लिए एक अलग से मंत्रालय की स्थापना की गई। साथ ही १८६८ से प्रत्यावर्तन संधि और १८७० में नमक संधि भी सम्पन्न हुई जिसके अनुसार राज्य के चार प्रमुख उत्पादन केन्द्र डीडवाना, पचपदरा, फलौदी और लूनी ब्रिटिश सरकार को पट्टे पर दे दिए गए। प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिए १८७० में समूचा प्रशासन महाराजा तख्तसिंह के पुत्र और राज्य के भावी उत्तराधिकारी जसवंतसिंह को सौंप दिया गया। इस संबंध में यह भी कहा जाता है कि ब्रिटिश सरकार के द्वारा यह कदम इसलिए उठाया गया था कि १८७० में अजमेर में जो दरबार आयोजित किया गया था वहां महाराजा तख्तसिंह द्वारा अपनाई गई नीति

और व्यवहार से ब्रिटिश सरकार प्रसन्न नहीं थी। कुछ भी हो, महाराजा कुमार जसवन्तसिंह ने शासन-व्यवस्था को सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान दिया और एक बड़ी सीमा तक राज्य में शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो गई।

महाराजा जसवतसिंह के शासनकाल मे न केवल राजनैतिक सुधार ही लागू किये गये बल्कि भू-राजस्व-व्यवस्था को भी सुधारा गया। आबकारी कर-व्यवस्था को भी नियमित करने का प्रयत्न किया गया। समूचे राज्य को पाच क्षेत्रो में विभाजित कर दिया गया और प्रत्येक क्षेत्र एक इन्सपेक्टर के अधीन कर दिया गया। १८८४–८५ में आबकारी व्यवस्था के अधीन गाजा और भाग जैसी नशीली वस्तुओं को भी सम्मिलित कर लिया गया। १८८८ विदेशी शराब बेचने के लिए लायसेंस देने की प्रथा का प्रारम्भ हुआ और इसी प्रकार राज्य की मुद्रा पर शाहआलम के स्थान पर महारानी विक्टोरिया की छाप अंकित की जाने लगी।

१८६८ से पूर्व राज्य मे केवल प्राथमिक स्तर तक हिन्दी में शिक्षा दिए जाने की व्यवस्था थी, परन्तु अब आधुनिक पद्धति पर आधारित नए स्कूल खोले गए। १८९३ मे जसवन्त कालेज की स्थापना हुई और १८९८ मे यहा बी० ए० की शिक्षा भी दी जाने लगी। १८८८ में कर्नल वाल्टर, तत्कालीन एजेन्ट गवर्नर जनरल के नेतृत्व में जोधपुर वाल्टर कृत राजपूत हितकारिणी सभा की स्थापना हुई जिसका एकमात्र उद्देश्य राजपूत जाति का विकास और उनकी सामाजिक कुरूतियों को दूर करना था।

जयपुर में सुधार

अन्य राज्यो के समान ही जयपुर में भी विभिन्न राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक सुधार लागू किए गए। १८६७ मे आठ सदस्यो की एक राज्य परिषद् बनाई गई जिसे विभिन्न प्रशासनिक विभाग सुपुर्द किए गए। इसी प्रकार १८६० में पुलिस नियम बनाए गए, जिनको १८७३ मे पुनः संशोधित किया गया। १८४४ में महाराजा कालेज की स्थापना हुई, जिसमें प्रारम्भ में वहां ४० विद्यार्थी थे वहा १८७५ में इनकी संख्या बढकर ८०० हो गई। १८४५ में एक संस्कृत कालेज, १८६१ में राजपूत छात्रो के लिए एक विद्यालय और १८६७ में छात्राओ के लिए एक माध्यमिक विद्यालय और आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स विद्यालय की स्थापना की गई। कुल मिलाकर अब ३३ राजकीय सहायता प्राप्त विद्यालय और ३७८ प्राइवेट विद्यालय मौजूद थे, जिनमें कुल मिलाकर लगभग ८००० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे।

१८७० में प्रथम राजकीय अस्पताल की स्थापना हुई, जिनकी संख्या महाराजा रामसिंह के शासनकाल में बढ़कर २४ हो गई। इसी समय अजमेर आगरा रेलवे लाइन का निर्माण हुआ और डाक-तार-व्यवस्था भी स्थापित हुई। १८६८ में जयपुर नगर की देखभाल के लिए नगरपालिका की भी स्थापना हुई। इन सुधारों का परिणाम यह हुआ कि जयपुर शीघ्र ही भारत के इने-गिने व्यवस्थित राज्यों में से एक गिना जाने लगा।

कोटा में सुधार

१८५७ के विप्लवकारियों को सफलतापूर्वक दबा देने के पश्चात् सबसे बड़ी समस्या प्रशासन के पुनर्गठन की थी। अतः ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्ट के सुझाव पर महाराव कोटा ने राज्य में अनेक सुधार लागू किये। १८६२ में राज्य को अनेक जिलों में विभाजित किया गया और प्रत्येक जिले का प्रशासन एक जिम्मेदार को सौंप दिया गया। इसी प्रकार कानून और व्यवस्था की स्थिति को सुधारने के लिए पुलिस विभाग पुनर्गठित किया गया और शांति और व्यवस्था बनाए रखने की जिम्मेदारी कोतवाल के सुपुर्द कर दी गई। *रिश्वत लेना कानूनी अपराध घोषित किया गया* और सरकारी कार्यालयों के काम करने का समय निर्धारित किया गया। १८७४ में राज्य के प्रशासन की देखभाल के लिए फैजअली खां को नियुक्त किया गया, यद्यपि थोड़े ही समय पश्चात् कोटा महाराव और फैजअली खां के आपसी संबंध बिगड़ गए तथापि इस छोटी सी अवधि में फैजअलीखां ने अनेक सुधार लागू किए, जिनके अंतर्गत *डाक-व्यवस्था, टप्पन कचहरी का उन्मूलन एवं एक तीन सदस्यीय परिषद् की* स्थापना प्रमुख थी।

इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। पहली बार छात्रों एवं छात्राओं के लिए एक स्कूल की स्थापना की गई जिस पर राज्य की ओर से ३७६० रुपये खर्च किए गए। १८७२ में राज्य में पहले अस्पताल की स्थापना हुई जिसमें कन्हैयालाल नामक एक डाक्टर, एक कम्पाउन्डर और एक ड्रेसर की नियुक्ति की गई। राज्य के इतिहास में यह पहला अवसर था, जबकि *दवाइयां खरीदने के लिए धनराशि स्वीकार की गई।*

अजमेर दरबार (१८७०)

२२ अक्टूबर १८७० को भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल और वाइसराय लार्ड मेयो ने राजपूताना के सभी राजाओं और महाराजाओं का अजमेर में

एक दरबार आयोजित किया। इस दरबार में भाग लेने के लिए उदयपुर, जोधपुर, बूंदी, कोटा, किशनगढ़ झालरापाटन, टोंक और शाहपुरा इत्यादि के महाराजाओं ने भाग लिया। दरबार को सम्बोधित करते हुए गवर्नर जनरल मेयो ने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक राज्य में न्याय शांति और व्यवस्था बनी रहनी चाहिए और राजाओं को चाहिए कि वे राज्य के बहुमुखी विकास में अपना योगदान दें।

प्रिन्स आफ वेल्स की भारत-यात्रा (१८७५)

जैसाकि पूर्व पृष्ठों में स्पष्ट किया जा चुका है, राज्यों में लागू किए गए सुधारों की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं हुई थी, परिणाम यह हुआ कि देशी राजा महाराजाओं और ब्रिटिश सरकार के मध्य संबंधों में कटुता उत्पन्न हो गई। अतः वातावरण को स्वच्छ बनाने एवं आपसी संबंधों को सुधारने की दृष्टि से ब्रिटिश सरकार ने प्रिन्स आफ वेल्स को भारत-यात्रा पर भेजने का निश्चित किया। प्रिन्स आफ वेल्स का स्वागत सत्कार करने के लिए राजस्थान में विभिन्न राजा-महाराजाओं में आपसी होड़ होने लगी, सम्भवत: वे ब्रिटेन के प्रति अपनी राजभक्ति का प्रकटीकरण करना चाहते थे। जहां राजपूताना के सभी राजाओं को प्रिन्स आफ वेल्स के स्वागत सत्कार के लिए आमन्त्रित किया गया था, वहीं दूसरी ओर कोटा के महाराव को निमंत्रित नहीं किया गया सम्भवतः इसका मुख्य कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार कोटा महाराव से मेजर बर्टन हत्याकाण्ड के मामले को लेकर असन्तुष्ट थी। यहां तक कि जब महाराव कोटा ने तार भेजकर ब्रिटिश सरकार से यह प्रार्थना की कि उन्हें भी प्रिन्स आफ वेल्स के स्वागत सत्कार करने के लिए आगरा आने की अनुमति दी जाए तो ब्रिटिश सरकार ने यह कहकर कि अब विलम्ब बहुत हो चुका है और व्यवस्था करना सम्भव नहीं है, कह कर महाराव की प्रार्थना को ठुकरा दिया।

१ जनवरी, १८७७ को महारानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी की उपाधि से विभूषित किया गया। इस अवसर पर राजस्थान के सभी राजा-महाराजाओं ने दिल्ली में उपस्थित होकर साम्राज्ञी के प्रति सम्मान और निष्ठा प्रदर्शित की। इस अवसर पर जोधपुर के कवि मुरारीदान के द्वारा एक कविता भी लिखकर भेजी गई, जिसमें महारानी को चक्रवर्ती सम्राट के नाम से सम्बोधित किया गया था। विभिन्न राज्यों में अनेक समारोह आयोजित किए गए और ब्रिटेन के प्रति स्वामी भक्ति का प्रदर्शन किया गया। परन्तु महत्वपूर्ण

बात यह थी कि कोटा राज्य के सरदारो ने इस प्रकार के आयोजना का बहिष्कार करके अपनी ब्रिटिश विरोधी भावना का परिचय दिया।

अफगान युद्ध (१८७८–७६) और राजस्थान के राजाओं का सक्रिय सहयोग

हम देख चुके हैं कि १८५७ में विप्लव के दौरान राजस्थान के राजा महाराजाओ ने ब्रिटेन का पूर्ण समर्थन किया था, इसी प्रकार जब १८७८ में ब्रिटेन अफगान युद्ध प्रारम्भ हुआ तो भी इन राजाओं ने ब्रिटेन का ही साथ दिया। वास्तव में ब्रिटेन का समर्थन करके ये राजा महाराजा ब्रिटेन के प्रति अपनी स्वामी भक्ति का प्रदर्शन करना चाहते थे। भरतपुर, कोटा, बीकानेर, अलवर आदि के महाराजाओं ने हर समय सैनिक सहायता प्रदान की और कामना की कि शीघ्र ही ब्रिटिश सरकार काबुल पर विजय प्राप्त करेगी। अफगान युद्ध की समाप्ति के पश्चात् जब ब्रिटिश अफगान सधि पर हस्ताक्षर हुए तब भी उदयपुर, जयपुर, जोधपुर और कोटा आदि के महाराजाओं ने ब्रिटिश साम्राज्ञी को बधाई सदेश भेजते हुए ब्रिटेन के प्रति अपनी स्वामीभक्ति का आश्वासन दिया और अपने अपने राज्यो में विभिन्न समारोह आयोजित करके ब्रिटिश विजय पर प्रसन्नता व्यक्त की।

स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज आदोलन

राजस्थान मे राजनैतिक चेतना के उदय और विकास [redacted] आर्य समाज के सस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का अविस्मरणीय योगदान रहा है। यह वह समय था जब समूचे राजस्थान में अधिकांश नागरिक अपने अधिकारों और कर्त्तव्यो के प्रति अनभिज्ञ थे। हिन्दू धर्म मे अनेक सामाजिक कुरीतियां जन्म ले चुकी थीं। इस अवसर पर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आशा की किरण दिखाई। १० अप्रेल १८७५ को बबई मे आर्य समाज की स्थापना हुई। शीघ्र ही १८८० से १८६० के मध्य राजस्थान में विभिन्न स्थानों पर आर्य समाज की शाखाए खोली गयी। १८८३ में स्वामी दयानद सरस्वती ने उदयपुर मे परोपकारिणी सभा की स्थापना की जिसे कुछ समय बाद अजमेर स्थानांतरित कर दिया गया। इस परोपकारिणी सभा के २३ सदस्य थे, जिनमे शाहपुरा के महाराजा उदयपुर के दीवान श्यामजी कृष्ण वर्मा और महादेव गोविन्द रानाडे आदि प्रमुख थे। स्वामी दयानद राजस्थान के राजाओं की रीति नीति से सतुष्ट नही थे। उनका विचार था कि राजा महाराजाओ

को जनता की सार्वजनिक भलाई के लिए कार्य करना चाहिए जिससे कि नागरिकों में सामाजिक और राजनैतिक चेतना का विकास हो सके। जून, १८६५ में स्वामी दयानंद ने राजस्थान की पहली यात्रा की वे महाराजा करौली के अतिथि रहे, तत्पश्चात् उन्होंने जयपुर, अजमेर, पुष्कर और उदयपुर की भी यात्रा की। ११ अगस्त १८८२ को महाराणा उदयपुर में बातचीत के दौरान स्वामी दयानंद ने इस बात पर बल दिया कि हमें पश्चिम का अंधानुसरण नहीं करना चाहिए और हम अपनी भारतीय संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए। ३१ मई, १८८३ को महाराजा जोधपुर के निमंत्रण पर स्वामी दयानंद जोधपुर पहुंचे। महाराजा जसवंतसिंह के छोटे भाई सर प्रताप पर स्वामी दयानंद का गंभीर प्रभाव पड़ा। स्वयं महाराजा जोधपुर भी इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने मृत्युभोज और मद्यपान आदि कुरीतियों पर सरकारी आदेश लगाने के नियंत्रण जारी किए। स्वामी दयानंद के बढ़ते हुए प्रभाव से अनेक व्यक्ति रुष्ट थे अतः जोधपुर में ही एक मुस्लिम वेश्या के द्वारा उन्हें जहर दे दिया गया और ३० अक्टूबर १८८३ को अजमेर में उनकी मृत्यु हो गई।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने राजस्थान के राजा महाराजाओं और जनता के नाम संदेश में मुख्यतः चार तत्वों पर बल दिया। ये चार तत्व थे— स्वधर्म, स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा। उनका यह पक्का विश्वास था कि कोई भी राष्ट्र उस समय तक उन्नति नहीं कर सकता जबतक कि वह उपर्युक्त चारों तत्वों को न अपना ले। संभवतः स्वामी दयानंद सरस्वती भारत के पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सर्वप्रथम स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग करने पर बल दिया। उन्होंने ही १८७५ में पहली बार स्वराज्य शब्द का उपयोग किया जो बाद में भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की आधारशिला बना। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने पर बल दिया। उनका विश्वास था कि जबतक कोई राष्ट्र अपनी ही भाषा में कार्य नहीं करता तबतक उस राष्ट्र की उन्नति और विकास संभव नहीं है।

स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा चलाए गये आर्य समाज आंदोलन का भारी प्रभाव पड़ा। वास्तव में यह एक सामाजिक आंदोलन ही नहीं अपितु भारतीय नागरिकों में देश प्रेम उत्पन्न करने वाला आंदोलन भी था। सर्वाधिक रूप से स्वामी दयानंद का प्रभाव महाराजा जोधपुर, महाराणा उदयपुर और करौली के महाराव पर पड़ा। महाराजा जोधपुर ने तो यहां तक आदेश जारी

कर दिये कि सभी सरकारी कर्मचारियों के लिये खादी पहनना अनिवार्य होगा। आर्य समाज आंदोलन ने अनेक सामाजिक कुरीतियां जैसे सती प्रथा बहु विवाह और पर्दा प्रथा को भी समाप्त करने में योगदान दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षा का एक प्रभाव यह भी पड़ा कि राजस्थान के नागरिक राजनीतिक दृष्टि से जागृत हो उठे उन्हें अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का ज्ञान हुआ और इस प्रकार उनके हृदय में ब्रिटिश विरोधी भावनाएं जन्म लेने लगीं।

८

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और राजस्थान में क्रांतिकारी आंदोलन (१८८५–१९२४)

१८८४ का वर्ष आन्तरिक गतिरोध की समाप्ति और राजनीतिक पुनर्जागरण का काल कहा जा सकता है। दादाभाई नारोजी और ए. ओ. ह्यूम के संयुक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप २८ दिसम्बर १८८५ को बंबई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज भवन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जो आगे चलकर भारतीय स्वाधीनता संग्राम की आधार शिला बनी।

प्रारम्भ में कांग्रेस की मांगें केवल प्रशासनिक सुधार तक सीमित थी, परन्तु धीरे धीरे जन-जागृति के स्वरूप इसके उद्देश्य में परिवर्तन हुआ और अंततः इसके द्वारा पूर्ण स्वाधीनता की मांग की गई। दुर्भाग्य से राजस्थान के राजा महाराजाओं द्वारा कांग्रेस के विरुद्ध मोर्चा बनाया गया। ये राजा महाराजा कांग्रेस की नीति के प्रारम्भ से ही विरोधी थे क्योंकि वे यह जानते थे कि यदि कांग्रेस के कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया गया तो उनके राज्य की जनता भी अधिकारों की मांग करेगी और उस अवस्था में उनका निरंकुश शासन अधिक समय तक बना नहीं रह सकेगा। यही कारण है कि २५ अगस्त, १८८७ को महाराजा जयपुर के नाम भेजे गए अपने एक पत्र में सर सैयद

अहमद खां ने इस बात पर बल दिया था कि भारतीय रियासतों के राजाओं को कांग्रेस के कार्यक्रम का समर्थन नहीं करना चाहिए। सर सैयद अहमद खां ने इंडियन पैट्रीओटिक एसोसिएशन नामक संस्था की स्थापना भी की, जिसका सदस्य बनने के लिए सभी राजा महाराजाओं से अनुरोध किया गया था। परन्तु सर सैयद अहमद खां के उपर्युक्त पत्र पर महाराजा जयपुर ने अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

अजमेर में कांग्रेस कमेटी की स्थापना

राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता गया। १८८७ में गवर्नमेंट कॉलेज अजमेर के छात्रों ने मिलकर कांग्रेस कमेटी की स्थापना की। १८८८ में प्रयाग (इलाहाबाद) में जार्ज यूल की अध्यक्षता में राष्ट्रीय कांग्रेस का चतुर्थ अधिवेशन हुआ और पहली बार अजमेर का प्रतिनिधित्व गोपीनाथ माथुर और कृष्णलाल के द्वारा किया गया। राजस्थान में राजनैतिक विकास की ओर यह एक महत्वपूर्ण कदम था। इसी समय राजस्थान में पत्रकारिता का भी जन्म हुआ। राजस्थान का पहला पाक्षिक पत्र 'सज्जन कीर्ति सुधाकर' उदयपुर से प्रकाशित हुआ। १८८५ में ही अजमेर से 'राजस्थान टाइम्स' का पहला अंक प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही पत्र का हिंदी संस्करण 'राजस्थान पत्रिका' का प्रकाशन भी शुरू हुआ। आरंभ से ही इन पत्रों की नीति नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने की थी। इन पत्रों ने अपने सम्पादकीय में ब्रिटिश प्रशासन की खुलकर आलोचना की। यही कारण है कि दो वर्ष की संक्षिप्त अवधि के पश्चात् यह दोनों पत्र ब्रिटिश सरकार के आदेश पर बंद कर दिए गए और इसके सम्पादक बक्शी लक्ष्मणदास पर मुकदमा चलाया गया तथा १ वर्ष ६ महीने के कारावास की सजा दी गई। १८८६ में मुंशी समरथदान चारण के द्वारा एक नए पत्र 'राजस्थान समाचार' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार राजस्थान में अजमेर पत्रकारिता का केंद्र-बिंदु बना और शेष राजस्थान के नागरिकों के लिए मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता रहा।

कमिश्नर रैंड की हत्या और श्यामजी कृष्ण वर्मा

विभिन्न पत्रों के प्रकाशन का तात्कालिक प्रभाव यह पड़ा कि नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना का विकास बहुत तीव्रता से होने लगा। १८९७ में पूना में अकाल पड़ा साथ ही प्लेग की महामारी भी फैली। महामारी को रोकने के लिए

ब्रिटिश सरकार के द्वारा इंजेक्शन लगाए जाने प्रारम्भ हुए। इसी समय यह अफवाह फैली कि इन इंजेक्शनों में गऊ का मांस उपयोग में लाया जाता है। इस समाचार से महाराष्ट्र का वातावरण तनावपूर्ण हो उठा। अतः एक दिन जब महाराष्ट्र के कमिश्नर रैंड और उनके सहयोगी लेफ्टीनेंट आयर्स्ट एक मकान से इंजेक्शन लगाकर लौट रहे थे तो उन्हें गोली मार दी गई। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस घटना में श्यामजी कृष्ण वर्मा का भी हाथ था, परन्तु वे किसी तरह बच निकले और इंग्लैण्ड पहुंच गए। इंग्लैण्ड पहुंच कर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने इंडिया हाउस की स्थापना की और क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन किया, परिणामतः उन्हीं के एक शिष्य मदनलाल धिंगरा ने १ जुलाई, १९०९ को तत्कालीन भारत के सचिव कर्जन विली को गोली मार दी।

श्यामजी कृष्ण वर्मा स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य थे। उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से बी०ए० की परीक्षा पास की थी और अजमेर में वकालत प्रारम्भ की और बाद में वे उदयपुर राज्य के दीवान भी नियुक्त किए गए। श्यामजी कृष्ण वर्मा स्वदेशी वस्तुओं और वस्त्र के पक्के समर्थक थे और इसीलिए उन्होंने एक टैक्सटाइल मिल की भी स्थापना की। इस प्रकार उन्होंने राजस्थान में क्रांतिकारियों की गतिविधियों के लिए जमीन भी तैयार की।

राजस्थान में स्वदेशी आंदोलन :

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजस्थान के नागरिकों में जन-जागृति उत्पन्न करने-हेतु स्वदेशी आंदोलन प्रारम्भ किया गया। जैसाकि हम देख चुके हैं वास्तव में इस आंदोलन के जन्मदाता स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। राजस्थान में स्वदेशी आंदोलन का प्रारम्भ बांसवाड़ा, सिरोही, मेवाड़ और डूंगरपुर में हुआ जहां स्वामी गोविन्द गिरी के नेतृत्व में यह आंदोलन प्रारम्भ हुआ। सिरोही में सम्प सभा नामक संस्था की स्थापना की गई जिसका एकमात्र उद्देश्य नागरिकों की कठिनाइयों को ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करना था। गोविन्द गिरि के प्रभावशाली नेतृत्व में विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया और केवल स्वदेशी वस्त्रों को ही पहनने का निश्चय किया। स्वामी गोविन्द गिरि ने नागरिकों को मद्यपान छोड़ने और अपने राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करने का आह्वान किया। सम्प सभा

की इस प्रकार की गतिविधियों से ब्रिटिश सरकार चिंतित हो उठी और तदनुसार १६०८ मे ब्रिटिश सरकार के द्वारा एक आदेश जारी किया गया जिसमे सम्पा सभा की कार्यवाहियों को अवैध बताते हुए देशी राजाओं से अनुरोध किया गया कि वे अपने-अपने राज्य मे स्वदेशी आदोलन को पूरी तरह कुचल दें। इस प्रकार सरकार की दमनकारी नीति के परिणामस्वरूप स्वदेशी आदोलन की असामयिक मृत्यु हो गई।

दिल्ली दरबार (१६०३)

रेंड और आयर्स की हत्याए यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त थी कि भारत मे ब्रिटिश विरोधी वातावरण धीरे-धीरे अपनी चरम सीमा पर पहुच रहा था। ऐसी अवस्था मे वातावरण को शात करने की दृष्टि से भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने देशी रियासतों के राजा-महाराजाओं का सहयोग प्राप्त करने के लिए १६०३ मे दिल्ली-दरबार का आयोजन किया, जिसमे इन सभी राजा महाराजाओं को आमंत्रित किया गया था। लार्ड कर्जन के इस निमत्रण का राजस्थान के सभी राजा महाराजाओं ने बहुत जोरदार स्वागत किया, जयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, सिरोही और बीकानेर इत्यादि के राजाओ ने इस अवसर को ब्रिटिश सम्राट के प्रति अपनी स्वामी भक्ति प्रकट करने का एक उचित अवसर माना। सभवत राजस्थान मे उदयपुर के महाराणा ही एकमात्र ऐसे राज्याध्यक्ष थे जिन्होने बड़ी ही हिचकिचाहट के साथ दिल्ली दरबार मे उपस्थित होने की स्वीकृति भेजी थी, परतु यह स्वीकृति भी सशर्त थी, अर्थात् जब महाराजा को यह विश्वास दिला दिया गया कि उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार ही उन्हे स्थान दिया जायगा तब ही महाराणा दरबार मे सम्मिलित होने के लिए तैयार हुए। परतु इस सबके बावजूद उदयपुर के नागरिक महाराणा के इस निर्णय से सहमत नही थे क्योंकि उनका विश्वास था कि ब्रिटिश राज दरबार मे महाराणा की उपस्थिति उदयपुर की प्रतिष्ठा को आघात पहुचायगी और साथ ही यह हिंदू और विशेषकर राजपूत जाति के लिए गौरव की बात नही होगी। यही कारण है कि जब महाराणा फतेहसिंह दिल्ली दरबार में उपस्थित होने के लिए उदयपुर से रवाना हुए तो उनके एक दरबारी कवि बारहठ केसरीसिंह ने महाराणा को एक कविता दी जिसमे उदयपुर के पूर्ववर्ती महाराणाओं के यश, वैभव और साहस की प्रशसा की गई थी और महाराणा फतेहसिंह को स्मरण कराया गया था कि उदयपुर

राजघराने में सदैव श्रेष्ठ परंपराओं का निर्वाह किया है, और कभी भी किसी विदेशी शक्ति के सामने मस्तक नहीं झुकाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराणा फतेहसिंह पर इस कविता का गंभीर प्रभाव पड़ा और उन्होंने दिल्ली-दरबार में उपस्थित न होने का निश्चय कर लिया। ३१ दिसम्बर १६०२ को महाराणा दिल्ली पहुंचे जहां उन्हें यह जानकारी मिली कि उनका स्थान हैदराबाद, बड़ौदा, मैसूर और काश्मीर के महाराजाओं के पश्चात् निर्धारित किया गया है। निश्चय ही यह ब्रिटिश सरकार के द्वारा दिए गए आश्वासन के विरुद्ध था, अतः महाराजा ने बहाना बनाकर कि वे स्वयं और उनके लड़के लंबी यात्रा के कारण अस्वस्थ हो गए हैं अतः ड्यूक का स्वागत करने और दरबार में उपस्थित होने में असमर्थ हैं उदयपुर वापस लौट आए। गवर्नर जनरल महाराजा के उत्तर से स्पष्टतः ही असंतुष्ट थे, परंतु इस समय ब्रिटिश सरकार ने महाराणा के विरुद्ध कदम उठाने का निश्चय नहीं किया।

इस प्रकार जहां एक ओर अधिकांश राजा और महाराजा ब्रिटेन के प्रति अपनी स्वामी भक्ति प्रदर्शित कर रहे थे वहीं दूसरी ओर भारतीय जनता में ब्रिटिश विरोधी भावनाएं तेजी से फैल रही थीं। १६०४-५ में रूस जापान युद्ध हुआ। जापान जैसे छोटे से देश के हाथों रूस की पराजय ने भारत में एक नयी राजनैतिक चेतना को जन्म दिया। अब भारतीय भी यह विचारने लगे कि यदि जापान जैसा छोटा सा राष्ट्र रूस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र को पराजित कर सकता है तो क्या भारतीय ब्रिटिश शासन से लोहा नहीं ले सकते? इसी समय कुछ लेखकों ने जिनमें बंकिमचन्द्र चटर्जी मुख्य थे ऐसे उपन्यास प्रकाशित किए जो राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण थे, उदाहरणतः बंकिमचन्द्र चटर्जी का 'आनंद मठ' और 'कपाल कुण्डला' भारत के क्रांतिकारियों की गीता बन गया। इस प्रकार के वातावरण से राजस्थान भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। जयपुर के देश भक्त कवि चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत एक कविता लिखी जो फतेहपुर शेखावाटी से प्रकाशित होने वाले एक मासिक पत्र 'देशोपकारक' में प्रकाशित हुई।

बंगाल विभाजन (१६०५)

१६०५-६ में भारत का राष्ट्रीय आंदोलन क्रांतिकारी और आतंकवादी रूप धारण कर चुका था। इसी समय १६ अक्टूबर, १६०५ को लार्ड कर्जन ने तथाकथित प्रशासनिक कारणों के आधार पर बंगाल को दो भागों में

विभाजित करने की घोषणा की। वास्तव में यह क्रांतिकारी आंदोलन को कुचलने का एक निम्नस्तरीय कदम था। बंगाल विभाजन की घोषणा ने समूचे देश और खास तौर से बंगाल के नागरिकों को उत्तेजित कर दिया। भारतीय राष्ट्रवाद में वन्देमातरम् शब्द ने एक नया महत्व ग्रहण किया। अब तो युवा छात्र और नागरिक वन्देमातरम् कहकर ही एक दूसरे को अभिवादन करने लगे और इससे ब्रिटिश सरकार इतनी अधिक चिंतित हुई कि उसने वन्देमातरम् कहने पर भी रोक लगा दी।

बंगाल की हवा राजस्थान में भी पहुंचनी आरम्भ हुई। ब्रिटिश सरकार ने तत्कालीन नियमों के अधीन राजस्थान के सभी राजाओं से अनुरोध किया कि वे अपने अपने राज्यों में किसी भी प्रकार का क्रांतिकारी साहित्य और आतंकवादी साधन न तो आने दें और न ही पनपने दें। भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो (१९०९ में) ने जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, अलवर और धौलपुर आदि महाराजाओं को एक संदेश भेजा, जिसमें इस क्रांतिकारी आंदोलन को हर संभव तरीकों से कुचल देने का निर्देश दिया गया था। अपने प्रत्युत्तर में राजस्थान के सभी राजाओं ने ब्रिटिश सरकार को अपना पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। महाराजा बीकानेर ने तो भारतीय प्रेस को नियंत्रित कर देने की भी मांग की। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, उदयपुर बूंदी किशनगढ़ और अन्य राजाओं ने अपने अपने राज्य में आदेश जारी किए जिसके अनुसार किसी भी प्रकार के क्रांतिकारी संगठन में शामिल होना अथवा क्रांतिकारी साहित्य रखना या पढ़ाना और किसी भी सार्वजनिक सभा में बिना अनुमति के उपस्थित होना दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया। यही नहीं बल्कि आय समाज के साहित्य को भी जप्त कर लेने के आदेश जारी कर दिए गए। इसी प्रकार ब्रिटिश विरोधी प्रचार पर भी पाबंदी लगा दी गई। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण घटना उद्धृत करना समीचीन होगा। कुमारी पेरिन मेरोजी जो कि ब्रिटिश विरोधी क्रांतिकारी संगठन की एक सदस्य की मित्र थी—ने बीकानेर राज्य में नियुक्ति के लिए आवेदन पत्र भेजा परंतु महाराजा बीकानेर ने न केवल उनके प्रार्थना पत्र को ही अस्वीकृत किया अपितु राजस्थान के अन्य सभी राजाओं से भी यह अनुरोध किया कि उसे राजस्थान में कहीं भी नियुक्त न किया जाय। इसी समय राजस्थान के प्राय सभी राजाओं ने एक नया आदेश जारी करके ब्रिटिश विरोधी कार्यों को दण्डनीय अपराध' घोषित कर दिया।

महाराजा अलवर का दृष्टिकोण .

इस सदर्भ मे अलवर के महाराजा जयसिंह देव का दृष्टिकोण उल्लेख-नीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराजा अलवर ब्रिटेन को सर्वोच्च सत्ता के रूप मे मानने को तैयार नही थे और न ही वे भारत मे ब्रिटिश शासन के बने रहने से प्रसन्न थे। १६०६ मे जब भारत के गवर्नर जनरल अलवर की यात्रा पर आने वाले थे तो महाराजा ने यहा तक सुझाव दे डाला कि जिस कमरे मे गवर्नर जनरल ठहरेंगे उस पर अलवर राज्य का ध्वज फहराया जाना चाहिए। इसी प्रकार जब ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड सप्तम की मृत्यु हुई तो महाराजा ने झडे झुकाने से इन्कार कर दिया। सभवत यह इन्ही घटनाओ का परिणाम था कि ब्रिटिश सरकार ने महाराजा के आचरण के विरुद्ध आवश्यक जाच पडताल करने का आदेश दिया और ब्रिटिश नागरिको को यह परामर्श दिया कि उन्हे अलवर राज्य मे नियुक्ति के लिए आवेदन नहीं करना चाहिए।

राजस्थान मे क्रांतिकारी आंदोलन :

राजस्थान मे सभी प्रकार की गतिविधियो पर नियत्रण लगा देने के बावजूद भी क्रान्तिकारी आदोलन पनपने लगा। जब भारतीय मुसलमान भी ब्रिटिश विरोधी आदोलन मे सम्मिलित होने के लिए गभीरतापूर्वक विचार करने लगे थे। उदाहरणत काबाई से भारतीय मुसलमानो के नाम एक पत्र भेजा गया था, जिसमे उनसे ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आदोलन मे शामिल होने का अनुरोध किया गया था। इस समय उत्तर भारत मे अनेक क्रान्तिकारी दल कार्य कर रहे थे जो राजस्थान के क्रातिकारियो से भी सबधित थे। राजस्थान मे क्रातिकारियो का नेतृत्व जयपुर, कोटा और अजमेर से क्रमश अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहट और राव गोपालसिंह एव दामोदरदास राठी के द्वारा किया जा रहा था। अब हम सक्षेप मे इन तीन प्रमुख क्रातिकारियो की गतिविधियो की विवेचना करेंगे।

अर्जुनलाल सेठी और उसका क्रांतिकारी दल :

इस समय जयपुर का राजनैतिक वातावरण अत्यन्त ही तनावपूर्ण था, क्योंकि राज्य के द्वारा इतने अधिक नियत्रण लगाए जा चुके थे कि किसी भी व्यक्ति के लिए अपने विचार तक प्रकट करना असमव था। इस वातावरण मे भी अर्जुनलाल सेठी और उसके क्रातिकारी सहयोगी ब्रिटिश शासन के

विरुद्ध योजना तैयार कर रहे थे। अर्जुनलाल सेठी एक सम्भ्रांत परिवार के ग्रेजुएट थे, उन्होंने जैन वर्धमान पाठशाला के नाम से जयपुर मे एक स्कूल प्रारंभ किया जो वास्तव मे क्रांतिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान किया करता था। अर्जुनलाल सेठी के इस विद्यालय मे न केवल राजस्थान से ही अपितु भारत के विभिन्न भागो से क्रांतिकारी शिक्षा दीक्षा लेने आते थे। इस प्रकार अर्जुनलाल सेठी का स्कूल शीघ्र ही राजस्थान में क्रांतिकारी एवं आतंकवादी गतिविधियो का केन्द्र बन गया।

निमेज हत्याकांड

तदनुसार अर्जुनलाल सेठी द्वारा एक धनिक महन्त की हत्या करने का षड्यन्त्र तैयार किया गया। इसका मुख्य कारण यह था कि क्रांतिकारियों के पास धन का सर्वाधिक अभाव था और भावी योजनाएं तभी पूरी हो सकती थीं जबकि इन क्रांतिकारियो के पास धन प्रचुर मात्रा मे हो। अतः मुगलसराय स्थित एक धनिक महन्त की हत्या कर उसका धन ले आने का निश्चय किया गया। इसके लिए अर्जुनलाल सेठी के स्कूल के छात्र सर्वश्री माणकचन्द, मोतीचन्द, जोरावरसिंह व जयचंद नियुक्त किए गए। विष्णुदत्त के नेतृत्व में इस दल ने बनारस की ओर प्रस्थान किया और २० मार्च, १९१३ को उस धनिक महन्त व उसके नौकर की हत्या कर दी गई परन्तु दुर्भाग्य से क्रांतिकारियों के हाथ केवल एक टाइमपीस घड़ी व पानी पीने के बर्तन के अतिरिक्त कुछ न लगा। इस समूची घटना का रहस्योद्घाटन तब हुआ जबकि श्योनारायण नामक एक युवक क्रांतिकारी मुखबिर बन गया। परिणामतः उपर्युक्त सभी क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गए जिनमें से मोतीचन्द को मृत्युदंड तथा विष्णुदत्त को आजीवन कारावास का दंड मिला। सबूत के अभाव मे अर्जुनलाल सेठी को गिरफ्तार नहीं किया जा सका।

दिल्ली षड्यन्त्र कांड

२३ दिसंबर, १९१२ को भारत के गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिग्ज का जुलूस चांदनी चौक, दिल्ली में से होकर गुजरा और उसी समय उन पर बम फेंका गया। इस घटना ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत के युवा क्रांतिकारी पूर्णत सक्षम हैं और वाइसराय का जीवन भी उनकी पहुच के बाहर नहीं है। सैनिक एवं पुलिस की कड़ी व्यवस्था के मध्य वाइसराय के ऊपर बम फेंका जाना कोई मामूली बात नहीं थी। सामान्यत ऐसा विश्वास किया जाता

है कि यह बम रासबिहारी बोस ने फेंका था, परन्तु यह अधिक तार्किक प्रतीत नहीं होता। *ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि वास्तव में यह बम* राजस्थान के क्रांतिकारी ठाकुर जोरावरसिंह बारहठ ने जो कि जोधपुर महाराजा के भूतपूर्व दीवान थे, बुर्जा ओढ़कर चांदनी चौक स्थित मारवाड़ी लाइब्रेरी से फेंका था। हार्डिञ्ज बम-काड अथवा दिल्ली-षडयन्त्र काड के सिल-सिले में अनेक क्रांतिकारी गिरफ्तार किए गए जिनमें लाला अमीरचंद, छोटेलाल उर्फ रामलाल, अवोध बिहारी, बाल मुकुन्द, मोतीचंद, विष्णुदत्त और अर्जुनलाल सेठी प्रमुख थे।

इस षडयन्त्र काड के फैसले के अन्तर्गत यद्यपि बाल मुकुन्द और मोतीचन्द को लार्ड हार्डिञ्ज एर बम फेंकने के अपराध में मृत्यु दड दे दिया गया परन्तु सबसे दिलचस्प बात यह थी कि यह पूरा मुकदमा परिस्थितियों से सबंधित साक्षियों पर आधारित था, प्रत्यक्ष साक्षी पर नहीं। अमीरचंद मुखबिर बन गया था और अदालत में दिए गए उसी की गवाही से रहस्यो-द्घाटन हुआ कि इस षडयन्त्र को तैयार करने में अर्जुनलाल सेठी का भी गहरा हाथ था। पुलिस ने अर्जुनलाल सेठी को तो गिरफ्तार कर लिया परन्तु वह रासबिहारी बोस व जोरावरसिंह बारहठ को गिरफ्तार करने में असफल रही। यद्यपि सबूत पक्ष अर्जुनलाल सेठी के विरुद्ध कोई भी मामला बनाने में सफल न हो सका तथापि *बिना मुकदमा चलाए ही सेठी को जेल में बद रखा गया* और बाद में ५ दिसम्बर, १९१४ को जयपुर महाराजा के आदेश पर उन्हें पांच वर्ष के कारावास की सजा दे दी गई। अर्जुनलाल सेठी पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सका, उपर्युक्त कारावास देते समय केवल इतना ही कहा गया था कि अर्जुनलाल सेठी राजनीतिक षडयन्त्रों में सम्मिलित हैं और वह शांति व व्यवस्था के लिए गभीर खतरा है। यहा तक कि इस भय से कि कहीं जयपुर में शांति और व्यवस्था खतरे में न पड जाय सेठी को मद्रास स्थित वेल्लोर जेल में *स्थानान्तरित कर दिया गया और बिना महाराजा* जयपुर के आदेश के उनके जयपुर प्रवेश पर प्रतिबध लगा दिया गया। बाद में १९२० में जब राजनीतिक बंदियों को क्षमा-दान दिया गया तो अर्जुनलाल सेठी को भी मुक्त कर दिया गया, परन्तु लंबी अवधि तक कारावास में रहने के कारण रिहाई के बावजूद जैन समाज में उन्हें सम्मानजनक स्थान प्राप्त नहीं हो सका और इसीलिए अत में निराश होकर उन्होंने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, और बाद में अजमेर स्थित दरगाह में उनकी मृत्यु हो गई।

केसरीसिंह बारहठ और कोटा क्रांतिकारियों का दल

अर्जुनलाल सेठी की तरह ही केसरीसिंह बारहठ ने भी कोटा में क्रान्तिकारियों का सगठन बनाया जिनमे डा० गुरुदत्त, लक्ष्मीनारायण और हीरालाल लहरी प्रमुख थे। केसरीसिंह बारहठ का यह विश्वास था कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए राजस्थान मे भी बगाल मे कार्य कर रही गुप्त समितियों के समान ही सगठनो की स्थापना की जानी चाहिए। निश्चय ही इस प्रकार के सगठन की सरचना के लिए धन की आवश्यकता थी अत डकैती और हत्या के द्वारा धन इकट्ठा करने की योजना बनाई गई। तदनुसार जोधपुर के एक धनिक साधु की हत्या करने का निश्चय किया गया। योजनानुसार प्यारेलाल साधु को जोधपुर से कोटा लाने के लिए रामकरन नामक एक क्रांतिकारी को भेजा गया जो साधू को सफलतापूर्वक २३ जून, १९१२ को कोटा लिवा लाया। तत्पश्चात् साधु को दूध मे मिलाकर जहर दे दिया गया परतु जब इसका प्रभाव होता दिखाई नही दिया तो २५ जून, १९१२ को हीरालाल लाहिरी ने साधु की हत्या कर दी। जबरदस्त खोजबीन व जाच पड़ताल के बावजूद पुलिस किसी भी व्यक्ति को लगभग ६ माह तक गिरफ्तार नही कर सकी। पुलिस द्वारा क्रान्तिकारियो को पकड़ने मे सफलता तब मिली जबकि रामकरण द्वारा केसरीसिंह बारहठ को गुप्त भाषा मे लिखा गया एक पत्र पकडा गया। इस पत्र मे यह कहा गया था कि अब तक आटा खराब हो गया होगा अत उसे चम्बल मे मछलियो को खिलाने के लिए फेंक दिया जाय। स्पष्टत ही इसका अर्थ यह था कि साधु के अवशेष नदी मे फेंक दिए जाएं जिससे कि पुलिस को हत्या किए जाने का कोई प्रमाण न मिल सके। परिणामत केसरीसिंह बारहठ हीरालाल लाहिरी रामकरण और हीरालाल जालोरी को साधु की हत्या किए जाने के अपराध म गिरफ्तार कर लिया गया। मुकदमे के दौरान लक्ष्मीलाल कायस्थ मुखबिर बन गया। केसरीसिंह बारहठ, हीरालाल लाहिरी और रामकरण को २०–२० वर्ष का कारावास तथा हीरालाल जालोरी को सात वर्ष के कारावास का दड दिया गया। प्रथम महायुद्ध के बाद १९१९ मे जब राजनीतिक बदियो को ब्रिटिश सरकार के द्वारा आम क्षमा दी गई तो भूल से केसरीसिंह बारहठ को भी रिहा कर दिया गया।

राव गोपालसिंह और क्रांतिकारी दल

अजमेर म खरवा के राव गोपालसिंह व कृष्णा मिल्स लि० ब्यावर

के सेठ दामोदरदास राठी राजस्थान में क्रांतिकारी आंदोलन से घनिष्ठ रूप से संबंधित थे। राव गोपालसिंह जहां योजनाओं को कार्य रूप देते थे वहीं सेठ दामोदरदास क्रांतिकारियों को आर्थिक सहायता देते थे। राव गोपालसिंह क्रांतिकारियों के लिए अस्त्र-शस्त्र की भी व्यवस्था करते थे और इन कार्यों में भूपसिंह उर्फ विजयसिंह पथिक भी उनकी सहायता करते थे। राव गोपालसिंह बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी रास बिहारी बोस और केसरीसिंह बारहठ से भी गुप्त रूप में सम्पर्क स्थापित किए हुए थे। वास्तव में अजमेर के इस क्रांतिकारी दल का पता निमेज हत्याकांड और बोस के साधू की हत्या के सिलसिले में लगा। तब राजस्थान में एजेंट गवर्नर जनरल ने राव को चेतावनी दी कि वे अपने आपको ब्रिटिश विरोधी एवं आतंकवादी गतिविधियों से अलग रखें, परन्तु राव पर इस चेतावनी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने प्रथम महायुद्ध के दौरान ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक सशस्त्र क्रांति की योजना बनाई।

सशस्त्र क्रांति योजना और प्रथम महायुद्ध :

१९१४ में जब यूरोप प्रथम महायुद्ध में उलझा हुआ था तो उत्तर भारत में सशस्त्र क्रांति करने की योजना बनाई जा रही थी। रास बिहारी बोस और शचिन्द्रनाथ सान्याल इस सशस्त्र क्रांति की योजना के कर्णधार थे। राजस्थान के क्रांतिकारी गोपालसिंह खारवा भी इस योजना से सबंधित थे। रास बिहारी बोस के एक संदेशवाहक मणीलाल ने फरवरी १९१५ के मध्य खारवा की यात्रा की थी और यह संदेश दिया था कि २१ फरवरी १९१५ का दिन सशस्त्र क्रांति करने के लिए निश्चित किया गया है और क्रांति का प्रारंभ रास बिहारी बोस के द्वारा दिल्ली पर आक्रमण करके प्रारंभ किया जायगा। रास बिहारी बोस ने अपने संदेश में राव गोपालसिंह से सक्रिय सहायता देने का अनुरोध किया था। राव गोपालसिंह को भी यह आशा थी कि यदि क्रांति हुई तो जोधपुर के सर प्रताप उसकी सक्रिय सहायता करेंगे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बीकानेर और जोधपुर के महाराजाओं की सहानुभूति क्रांतिकारियों के साथ थी और वे सशस्त्र क्रांति की सफलता के पश्चात् उदयपुर के महाराणा फतेहसिंह को दिल्ली का सम्राट घोषित करना चाहते थे। ऐसी भी आशा व्यक्त की गई थी कि मुल्तान, लाहोर और मेरठ की सेनाएं रास बिहारी बोस का साथ देंगी और इस अवस्था में राव गोपालसिंह के नेतृत्व में जोधपुर और बीकानेर की सेनाएं अजमेर पर आक्रमण

करेंगी। तदनुसार राव गोपालसिंह और भूपसिंह उर्फ विजयसिंह पथिक अजमेर नसीराबाद रेलवे लाइन के समीप एक जगल में घटो सकेत की प्रतीक्षा करते रहे, परतु उन्हें क्रांति करने का कोई सदेश नहीं मिला। इसका कारण यह था कि मणीलाल मुखबिर बन गया था और उसने क्रांतिकारियो के साथ विश्वासघात करके योजना की समस्त सूचना पुलिस को दे दी थी, परिणामत योजना विफल हो गई। ब्रिटिश सरकार ने २६ जून, १९१५ को राव गोपालसिंह को आदेश दिया कि वे २४ घटे के अदर-अदर खारवा को छोड़ दें और टाडगढ पहुचकर ३६ घटे के दौरान अपने आने की सूचना तहसीलदार को दे दें। आदेश मे यह भी कहा गया था कि टाडगढ निवास के दौरान राव गोपालसिंह, तहसीलदार की पूर्व अनुमति के बिना किसी भी व्यक्ति से नहीं मिल सकेंगे और उनके समस्त डाक पत्र तहसीलदार के द्वारा ही उन्हें भेजे जाएगे। आदेश के अनुसार राव गोपालसिंह को दिन मे एक बार अपनी उपस्थिति तहसीलदार के सम्मुख दर्ज करानी थी, और बिना तहसीलदार की अनुमति के वे टाडगढ की सीमा से बाहर नहीं जा सकते थे। आदेश के उल्लघन करने पर जुर्माना और तीन वर्ष तक का कारावास दिया जा सकता था। राव गोपालसिंह को टाडगढ के लिए रवाना होना पड़ा, उन्होने चलते समय अपने अवयस्क उत्तराधिकारी गणपतसिंह को जो उन्हें ब्यावर तक छोड़ने आया था, कहा कि-अपने देश के प्रति वफादार रहना।

१० जुलाई १९१५ को राव गोपालसिंह टाडगढ़ से बच निकला परतु बाद में २८ अगस्त, १९१५ को सलामबाद (किशनगढ़) स्थित एक शिवालय मे राव ने पुलिस के समक्ष इस आश्वासन पर आत्मसमर्पण कर दिया कि उसे एक राजनीतिक अभियुक्त माना जावेगा। तत्पश्चात् भारतीय सुरक्षा अधिनियम के अतर्गत दो वर्ष का साधारण कारावास का दण्ड दिया गया। राव गोपालसिंह को कानूनी सहायता देने मे इन्कार कर दिया और खारवा ग्राम सरकार ने अपने कब्जे मे ले लिया। कुछ समय बाद राव गोपालसिंह को शाहजहापुर स्थित बिहार जेल मे स्थानान्तरित कर दिया गया।

प्रतापसिंह बारहठ और सचिन्द्रनाथ सनियाल की गतिविधियां :

अब घटना चक्र तेजी से घूम रहा था, अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहठ और राव गोपालसिंह खारवा गिरफ्तार हो चुके थे अत अब क्रांतिकारी दल का नेतृत्व प्रतापसिंह बारहठ, बृजमोहनलाल और छोटेलाल के हाथों

मे आया। प्रतापसिंह बारहठ एक उत्साही क्रांतिकारी था और उसने एक बार फिर भारतीय सेना से मिलकर सशस्त्र क्राति करने की योजना बनाई। आवश्यक सहयोग एव अस्त्र शस्त्र की प्राप्ति के लिए पिगले को मेरठ भेजा गया। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि क्राति आरम्भ करने के सकेत के रूप मे भारत सरकार के गृह सदस्य सर रेजीनाल्ड क्रेडोक की हत्या कर दी जाय। क्रेडोक की हत्या करने की जिम्मेदारी जयचन्द नामक एक क्रातिकारी को सौंपी गई जो हरिद्वार मे बाबा काली कमली वाला के आश्रम मे ठहरा हुआ था। अत एक अन्य क्रातिकारी रामनारायण चौधरी को हरिद्वार भेजा गया जिससे कि वह जयचन्द को साथ ला सके। पुलिस की कडी व्यवस्था के बावजूद रामनारायण चौधरी सफलतापूर्वक हरिद्वार पहुच गए परन्तु जयचन्द ने वहा से चलने म असमर्थता व्यक्त की क्योकि उस समय वह एक और डकैती डालने मे व्यस्त था। परिणामत रामनारायण चौधरी को खाली हाथ वापस लौटना पडा। अब क्रातिकारियो ने क्रेडोक की हत्या करने की जिम्मेदारी प्रतापसिंह बारहठ को सौंपी, परन्तु क्रेडोक निश्चित समय पर नही पहुचा और इस प्रकार उसकी हत्या नहीं हो सकी। दूसरी ओर मेरठ मे पिगले को उस समय गिरफ्तार कर लिया गया जब वह अस्त्र शस्त्रो के साथ वहा से रवाना होने ही वाला था, और इस प्रकार क्राति की समस्त योजना छिन्न भिन्न हो गयी।

प्रतापसिंह बारहठ की गिरफ्तारी और बनारस-षडयन्त्र-काड

बनारस-षडयन्त्र-काड के सिलसिले म प्रतापसिंह बारहठ के विरुद्ध गिरफ्तारी के वारट जारी हो चुके थ, परन्तु वह भूमिगत हो गया और हैदराबाद (सिन्ध) के एक अस्पताल म कम्पाउन्डर बन गया। इसी बीच पुलिस को प्रताप के बारे मे खबर मिली और वह खोजबीन करते करते जयपुर पहुच गयी। पुलिस द्वारा प्रताप के परिवार को बहुत अधिक सताए जाने पर यह बता दिया गया कि प्रताप हैदराबाद मे है परन्तु हैदराबाद (सिन्ध) के स्थान पर हैदराबाद (दक्षिण) का पता दे दिया। परिणामत पुलिस हैदराबाद दक्षिण की ओर रवाना हुई और उधर प्रताप के मुख्य सहयोगी रामनारायण चौधरी हैदराबाद सिन्ध की ओर रवाना हुए, जिससे कि प्रताप को अन्य सुरक्षित स्थान पर ले जाया जा सके। अत पुलिस से बचने के लिए प्रताप हैदराबाद से रवाना हुआ और जोधपुर के निकट आसानाडा रेलवे स्टेशन पर स्टेशन मास्टर से जो कि उन्हीं के दल का एक सदस्य था, "मिलने के लिए

उमर पड़ा। परन्तु कुछ ही दिन पूर्व आसानाडा स्टेशन पर बम की एक पारसल बरामद हुई थी और अपने आपको बचाने के लिए स्टेशन मास्टर मुखबिर बन गया था। परिणाम यह हुआ कि प्रताप को गिरफ्तार कर लिया गया और उसे बनारस षडयंत्र के सिलसिले में पांच वर्ष के कारावास की सजा दी गई। निर्णय में यह भी कहा गया था कि क्रान्तिकारियों ने मध्य भारत के आतंकवादियों के सम्पर्क साधनों में प्रताप की सेवाओं का सहारा लिया था।

रामनारायण चौधरी की गतिविधियां

जब प्रतापसिंह बारहठ आसानाडा रेलवे स्टेशन पर उतरा था तब यह निश्चय किया गया था कि रामनारायण चौधरी उसकी बीकानेर में प्रतीक्षा करेगा। अत जब प्रताप बीकानेर नहीं पहुंचा तो योजनानुसार रामनारायण चौधरी ने आसानाडा के स्टेशन मास्टर को एक पत्र लिखा। यह पत्र पुलिस के हाथ लग गया और तीन दिन के अन्दर ही अन्दर सी आई डी पुलिस इन्सपैक्टर मगनराज व्यास रामनारायण चौधरी को गिरफ्तार करने बीकानेर पहुँचे परन्तु चौधरी के चाचा के प्रभाव के कारण उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सका। रामनारायण चौधरी पुलिस से बचने के लिए जयपुर पहुंच गए जहां यह निश्चय किया गया कि उसे भूमिगत हो जाना चाहिए और साभर में कृष्णा सोहानी नामक एक अन्य क्रान्तिकारी के साथ ठहरना चाहिए। नवम्बर, १९१५ में जब बनारस षडयंत्र कांड के सिलसिले में सचिन्दनाथ सान्याल और प्रतापसिंह बारहठ को लम्बे लम्बे कारावास की सजा सुनाई जा चुकी थी उस समय रामनारायण चौधरी नीम का थाना (जिला सीकर) स्थित अपने निवास स्थान वापिस लौटे परन्तु यहां भी सी आई डी इन्सपैक्टर मगनराज व्यास उसका पीछा कर रहा था। अत यह निश्चय किया गया कि किसी तरह मगनराज व्यास को अजमेर ले जाया जाय और वहां छोटेलाल नामक एक क्रान्तिकारी उसे गोली मार दे। परन्तु योजना क्रियान्वित नहीं हो सकी। तत्पश्चात् रामनारायण चौधरी रामगढ़ शेखावाटी के एक मिडिल स्कूल में अध्यापक हो गया उसने वहां भी क्रान्तिकारी दल का सगठन किया परन्तु यह सगठन कोई विशेष कार्य नहीं कर सका।

१९१५ में जयपुर के एक जैन वकील ने जयपुर के प्रधानमंत्री और ब्रिटिश रेजीडेंट के विरुद्ध कुछ इश्तहार बांटे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इश्तहार का प्रारूप रामनारायण चौधरी के द्वारा तैयार किया गया था

और एक साईकिल वाले की दुकान पर जैन वकील ने इसे साइक्लोस्टाइल किया था तथा म्यजन विलास कंपनी के मैनेजर के द्वारा इसे वितरित किया गया था। अगले ही दिन शहर के सभी प्रमुख स्थानों राजभवन, स्कूल और थाने व पुलिस थानों पर उपर्युक्त इश्तहार चिपके हुए देखे गए। काफी खोजबीन के बाद साइक्लोस्टाइल इश्तहार का एक पर्चा जैन वकील के यहां से बरामद हुआ, उसके साथियों का पता लगाने के लिए पुलिस द्वारा जैन वकील को भारी यातनाएं दी गई, परन्तु अन्त तक उसने अपने सहयोगियों का नाम नहीं बताया और इस प्रकार जैन वकील के अन्य क्रांतिकारी सहयोगियों की गिरफ्तारी नहीं हो सकी।

प्रथम महायुद्ध और भारतीय राजाओं का दृष्टिकोण :

सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ। महात्मा गांधी का विचार था कि इस विपत्ति के समय भारत को ब्रिटेन की तन, मन धन से सहायता करनी चाहिए। देशी राज्यों के राजा भी ब्रिटेन को हर सम्भव सहायता दिए जाने के पक्ष में थे, तदनुसार बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर इत्यादि सभी राजाओं ने ब्रिटेन को हर सम्भव सहायता दी। देशी राजाओं द्वारा ब्रिटेन को सहायता दिए जाने का एक कारण यह भी था कि ये लोग इस तथ्य से भलीभांति परिचित थे कि ब्रिटिश-शासन ही उनकी गद्दियों को बनाए रख सकता है।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति और विभिन्न राजनीतिक गतिविधियां :

१९१९ में प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ। भारत में मान्टगू चेम्सफोर्ड सुधार लागू किए गए। इन सुधारों के अन्तर्गत देशी राज्यों के नरेन्द्रमण्डल की भी स्थापना हुई। साथ ही सम्पूर्ण भारत में ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन ने एक नया रूप धारण किया अब भारत में आन्दोलन का नेतृत्व महात्मा गांधी ने संभाला और इस प्रकार क्रांतिकारी आन्दोलन के स्थान पर अहिंसक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस समय राजस्थान से दो नए समाचार पत्रों 'राजस्थान केसरी' और 'तरुण राजस्थान' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इन समाचार पत्रों का एकमात्र उद्देश्य राजस्थान की जनता में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करना था साथ ही विभिन्न राज्यों में होने वाले आन्दोलनों के प्रति राजस्थान की जनता का ध्यान आकर्षित करना था। राजस्थान केसरी के सम्पादक विजयसिंह पथिक थे तथा रामनारायण चौधरी, हरिभाई किंकर और कन्हैयालाल कलयंत्रि उनके

सहयोगी थे। अर्जुनलाल सेठी और केसरीसिंह बारहठ ने पत्र में लेख लिखकर जन-जागृति में योगदान दिया। इस समय अजमेर में मुख्यतः तीन दल कार्य कर रहे थे। पहले दल का नेतृत्व विजयसिंह पथिक, दूसरे दल का नेतृत्व अर्जुनलाल सेठी और तीसरे दल का नेतृत्व गांधीवादी जमनालाल बजाज और हरिभाऊ उपाध्याय के हाथों में था।

१५ मार्च, १९२१ को राजस्थान पोलिटिकल कांग्रेस का द्वितीय अधिवेशन मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में अजमेर में सम्पन्न हुआ। इस कान्फ्रेंस में एक प्रस्ताव भी स्वीकार किया गया जिसमें मुसलमानों से असहयोग-आन्दोलन के समर्थन करने की अपील की गई थी और साथ ही प्रत्येक भारतीय नागरिक से यह माँग की गई थी कि वे विदेशी कपड़ों और वस्तुओं का बहिष्कार करें। अजमेर में भी असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। पंडित गौरीशंकर अजमेर के उन प्रमुख व्यक्तियों में से एक थे जिन्होंने महात्मा गांधी के सच्चे शिष्य के रूप में विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन के द्वारा राजनीतिक कैदियों को आम क्षमादान दिया गया, *अब राजस्थान के क्रान्तिकारी नेता अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारहठ और* राव गोपालसिंह रिहा कर दिए गए। एक बार फिर राजनैतिक हलचल प्रारम्भ हुई और परिणामतः मार्च १९२० में जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में 'राजस्थान मध्यभारत' सभा की स्थापना हुई। साथ ही साथ १९१९ में वर्धा में "राजस्थान सेवा संघ' की भी स्थापना की गई जिसे १९२० में अजमेर में स्थानान्तरित कर दिया गया। इस संघ का मुख्य उद्देश्य जनता की कठिनाइयाँ दूर करना और जनता और जागीरदारों के मध्य मधुर सम्बन्ध बनाए रखना था। बूंदी, जयपुर, जोधपुर और कोटा में सेवासंघ की अनेक शाखाएं स्थापित की गईं। परन्तु संघ के पदाधिकारियों में आपसी मतभेद इतने बढ़ गए कि १९२८ के अन्त तक एक प्रकार से संघ समाप्त हो गया।

राष्ट्रीय कांग्रेस का दृष्टिकोण (१९२१–२४)

कांग्रेस ने १८८५ से ही राज्यों के मामले में हस्तक्षेप करने की नीति अपना रखी थी। १९२० में नागपुर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, साथ ही साथ 'राजस्थान मध्यभारत सभा' का भी अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में एक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था जिसमें देशी रियासतों की जनता पर होने वाले अत्याचारों की कहानी को दर्शाया गया था, साथ ही जनता की गरीबी और अशिक्षित अवस्था का भी चित्रण किया गया था। परिणाम

यह हुआ कि कांग्रेस ने भी राज्यों की जनता की कठिनाइयों की ओर ध्यान देना आरम्भ किया। १९२१ मे कांग्रेस ने असहयोग-आन्दोलन आरम्भ करने संबंधी प्रस्ताव पारित किया। इसी बीच राजस्थान मे भी विशेषत बिजौलिया (बूंदी) बेगू (मेवाड) और शेखावाटी (जयपुर) मे किसान आन्दोलन भड़क उठा।

बिजौलिया आन्दोलन (१९१३–२२)

१९१३ मे पहले साधु सीताराम दास और बाद मे विजयसिंह पथिक के नेतृत्व मे बिजौलिया आन्दोलन आरम्भ हुआ। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य जागीरदारो द्वारा बिजौलिया की जनता पर लगाए गए करो और विभिन्न लागबाग के विरुद्ध आवाज उठाना था। विभिन्न त्यौहार एवं अवसरों पर जैसे फसल की कटाई, विवाह, जन्मदिन समारोह और जागीरदार के विभिन्न सामाजिक उत्सव पर प्रत्येक किसान को एक निश्चित मात्रा मे कर देना पड़ता था और इन्कार करने की अवस्था मे उसे भारी शारीरिक यातनाएं सहनी पड़ती थी। इसी प्रकार बेगार प्रथा प्रचलित थी। परिणाम यह हुआ था कि सुबह से शाम तक परिश्रम करने के बावजूद किसान के लिए भरपेट भोजन पा सकना असम्भव हो गया था। समूचे इलाके मे जागीरदारो के जुल्म का बोलबाला था और न्याय जैसे सिद्धान्त की समाप्ति हो चुकी थी। अत बिजौलिया के किसानो ने अपना विरोध प्रकट करने के लिए एक वर्ष तक के लिए खेती करना स्थगित कर दिया और साथ ही साथ भूराजस्व देने से इन्कार कर दिया। इस समय आन्दोलन का नेतृत्व साधु सीतारामदास कर रहे थे परन्तु इसी बीच १९१५ मे वे चित्तौड मे विजयसिंह पथिक से मिले और उनसे आन्दोलन का नेतृत्व संभालने का अनुरोध किया। साधु सीताराम दास ने जागीरदारों द्वारा असहाय जनता पर किए जाने वाले नृशंस अत्याचारो की कहानी सुनाई। पथिक ने नेतृत्व संभालना स्वीकार किया और इस प्रकार बिजौलिया आन्दोलन को एक नया उत्साही और साहसी नेता मिला। १९१६ मे बिजौलिया के किसानो ने साधु सीताराम की अध्यक्षता मे एक किसान पंच-बोर्ड की स्थापना की। विजयसिंह पथिक से प्रेरणा पाकर बिजौलिया के किसानो ने युद्ध ऋण देने से इन्कार कर दिया। उन्होने जागीरदारो को किसी भी प्रकार का सहयोग देने से इन्कार कर दिया और स्थिति यहां तक बिगड़ गई कि किसान पंचायत ने निर्णय ले लिया कि वे प्रत्यक्ष रूप से जागीरदारो से कोई संबंध नहीं रखेंगे और पंचायत के माध्यम से ही सब कार्य होंगे। स्थिति

इतनी अधिक बिगड़ी कि ब्रिटिश सरकार तक सतर्क हो गई और उसने यह घोषणा कर दी थी कि मेवाड़ और उसके आसपास के पहाड़ी इलाकों में बोल्शेविक तत्व घुसे हैं और वे रूसी क्रांति के आधार पर सशस्त्र क्रांति करना चाहते हैं। अतः ब्रिटिश सरकार ने मेवाड़ के महाराणा और अन्य जागीरदारों पर इस बात के लिए भारी दबाव डाला कि बिजौलिया आन्दोलन को शीघ्रातिशीघ्र कुचल दिया जाय। गिरफ्तारी से बचने के लिए विजयसिंह पथिक कोटा राज्य की सीमा में चले गए और वहीं से आन्दोलन का नेतृत्व करते रहे।

जब जागीरदारों ने किसानों की समस्या का हल करने का कोई कदम नहीं उठाया तो सत्याग्रह आरम्भ किया गया। प्रत्युत्तर में जागीरदारों ने दमनकारी सत्ता का सहारा लिया। हजारों किसान गिरफ्तार कर लिए गए जिनमें साधु सीतारामदास, रामनारायण चौधरी, प्रेमचन्द भील और माणिक्यलाल वर्मा भी शामिल थे। स्त्रियों को भी बख्शा नहीं छोड़ा गया और सार्वजनिक रूप से उनका अपमान किया गया। जागीरदारों ने समस्त जमीन को जब्ती घोषित कर लिया परन्तु किसानों ने समर्पण करने से इन्कार कर दिया। रामनारायण चौधरी जो स्थिति का अध्ययन करने बिजौलिया आ गए थे के अनुसार बिजौलिया का प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बच्चा राष्ट्रीय भावना से प्रेरित था और प्रत्येक स्थान पर वन्देमातरम् की आवाज सुनाई देती थी। बिजौलिया सत्याग्रह का समाचार सम्पूर्ण भारत में फैला यही कारण है कि महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, बाल गंगाधर तिलक और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ। जब स्थिति पर काबू नहीं किया जा सका तो राजस्थान में एजेन्ट गवर्नर जनरल सर रोबर्ट हालैण्ड और मेवाड़ के ब्रिटिश रेजीडेन्ट विल्किन्सन समस्या का समाधान निकालने के लिए बिजौलिया पहुंचे। मेवाड़ राज्य का प्रतिनिधित्व राज्य के दीवान प्रभाषचन्द्र चटर्जी और बिहारीलाल कौशिक तथा ठिकाने का प्रतिनिधित्व कामदार हीरालाल फौजदार तेजसिंह और मास्टर ज्ञानसिंह के द्वारा किया गया। बिजौलिया के किसानों ने इस बात पर बल दिया कि बातचीत में राजस्थान सेवासंघ के प्रतिनिधि भी शामिल किए जाएं अतः बिजौलिया पंचायत और सेवासंघ की ओर से रामनारायण चौधरी, माणिक्यलाल वर्मा और पंचायत सरपंच मोतीचन्द ने भाग लिया। एजेन्ट गवर्नर जनरल किसानों की मांगों और उनके समझौतावादी दृष्टिकोण से बहुत अधिक प्रभावित हुआ।

यही कारण है कि कई बार ए. जी. जी. ने ठिकाना अधिकारियों को डांट पिलाई और यहां तक कह दिया कि मैं नौकर गुण्डा नहीं चाहता। अन्त में ए. जी. जी. के हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप ठिकाने के जागीरदारों और बिजौलिया किसानों के मध्य समझौता सम्पन्न हुआ। समझौते के अनुसार किसानों की अनेक मांगें स्वीकार कर ली गईं जिनमें बेगार प्रथा की समाप्ति और अधिकांश लागतों का उन्मूलन सम्मिलित था। यह भी तय हुआ कि किसानों के विरुद्ध चलाये जाने वाले मुकदमे वापिस ले लिए जायें और जिन पर कार्यवाही नहीं की गई है उनका भुगतान नहीं किया जायेगा। इस प्रकार पथिकजी के उद्योगों से बीच १९२२ में बिजौलिया आन्दोलन सफलतापूर्वक समाप्त हुआ।

बेगूं आन्दोलन (१९२१–२२) :

बिजौलिया-सत्याग्रह की सफलता से प्रेरित होकर बेगूं के किसानों ने भी ठिकाने के अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया परन्तु ठिकाने के रावत साहब ने दमन चक्र का सहारा लिया और आन्दोलनकारियों को गोली मार देने तक की धमकी दी। राजस्थान सेवा संघ और माणिक्यलाल वर्मा के प्रयत्नों के फलस्वरूप धीरे धीरे जन जागृति हो रही थी। किसानों ने निश्चय किया था कि अब वे मद्यपान नहीं करेंगे, छुआछूत को समाप्त कर देंगे और स्वदेशी वस्त्र धारण करेंगे। निश्चय ही इस प्रकार के निश्चयों से ठिकाने के जागीरदार और अधिक भयभीत हो उठे और उन्होंने आन्दोलन को कुचलने के लिए हर तरह के हिंसात्मक साधन अपनाए यहां तक कि बच्चों और स्त्रियों के साथ भी असभ्यता एवं बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया जिसे शब्दों में व्यक्त किया जाना कठिन है।

राजस्थान सेवासंघ की ओर से रामनारायण चौधरी ने बेगूं पहुंच कर स्थिति का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि बेगूं के स्थानीय सेठ प्रमुख लोग और पुलिस के अत्याचारों की कहानी अवर्णनीय है। बेगूं के किसानों ने मेवाड़ के रेवेन्यू कमिश्नर मिस्टर ट्रेंच से हस्तक्षेप की प्रार्थना की। १३ जुलाई, १९२३ को ट्रेंच एक सैनिक टुकड़ी के साथ गोविन्दपुरा गांव पहुंचा और किसानों की सहायता करने के स्थान पर उसने गांव को आग लगा देने और किसानों पर गोली चला देने का आदेश दिया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि दो व्यक्तियों की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई और अनेक

घायल हो गए। १०० बच्चों सहित लगभग ५०० व्यक्ति गिरफ्तार किए गए जिन्हें बुरी तरह पीटा गया और बेगूं से लाया गया। इस दमन-चक्र के दौरान सिपाही घरों तक में घुस गए और उन्होंने स्त्रियों का बड़े ही शर्मनाक ढंग से सतीत्व हरण किया। परिणामतः वातावरण अत्यंत उत्तेजित हो गया और किसानों ने रावदा ठाकुर की हत्या तक करने का निश्चय कर लिया। जनता के धैर्य और उनके साहस को बनाए रखने के लिए विजयसिंह पथिक और हरिजी मानक गुप्त रूप से बेगूं पहुंच गए परन्तु पुलिस को पता चल गया और वे दोनों गिरफ्तार कर लिए गए। पथिक को उदयपुर लाया गया जहां उन पर राज्य विरोधी कार्य करने, आतंकवादी साहित्य को वितरित करने और महाराणा उदयपुर के आदेशों का उल्लंघन करने का आरोप लगाया। मुकदमे के दौरान विजयसिंह पथिक ने इस बात पर बल दिया कि देश भक्त होना कोई अपराध नहीं है और अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाना व्यक्ति का अधिकार है। यद्यपि पथिक के विरुद्ध नियुक्त किए गए आयोग ने उन्हें रिहा कर दिया तथापि मेवाड़ सरकार ने अपनी विशेष शक्तियों का उपयोग करते हुए उन्हें पांच वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया। १६२८ में पथिक को रिहा कर दिया गया और साथ ही मेवाड़ से निष्कासित भी कर दिया। मेवाड़ राज्य और ठिकाने के अधिकारियों के द्वारा किसानों पर किए जाने वाले अत्याचारों की कहानियां प्रत्येक समाचार पत्र में प्रकाशित हुई, यहां तक कि ब्रिटिश संसद में भी प्रश्न उठाया गया। अन्ततः ठिकाना अधिकारियों और किसानों के मध्य समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत किसानों की अधिकांश मांगें स्वीकार कर ली गई।

बूंदी और शेखावाटी में किसान आंदोलन :

बिजौलिया और बेगूं के किसान आंदोलन से प्रेरित होकर बूंदी के किसानों ने भी आंदोलन प्रारम्भ किया। बूंदी में भी किसानों को अनेक प्रकार की लाग देनी पड़ती थी और उनसे बेगार भी ली जाती थी। इसके अतिरिक्त समूचे राज्य में सार्वजनिक सभाओं, राष्ट्रीय गान और नारों पर पूर्ण प्रतिबंध था। अतः १६ जून, १६२२ को बूंदी के किसानों ने सत्याग्रह आरम्भ किया। राज्य ने दमन चक्र का सहारा लिया, परिणामतः सैकड़ों किसान गिरफ्तार किए गए जिनमें से दो की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई। इस समय बूंदी के किसान आंदोलन का नेतृत्व पंडित नैनूराम शर्मा के अधीन था जिसे दिसंबर १६२२ में गिरफ्तार कर लिया गया तथा उन पर राज्य विरोधी कार्य

करने का आरोप लगाते हुए १० मई, १६२२ को उसे चार वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया साथ ही राज्य [redacted] भी निष्कासित कर दिया गया। सत्याग्रह आंदोलन उत्तरोत्तर जोर पकड़ता गया, मई, १६२३ मे पुलिस ने अनेक स्थानो पर शांतिपूर्ण ढंग से सत्याग्रह करने वाले किसानो पर गोली चलाई जिसमें नानक भील नामक कार्यकर्ता की घटना-स्थल पर ही मृत्यु हो गई। तदुपरांत इस क्रूर दमन के सामने आंदोलन धीमा पड़ गया।

१६२१ मे चिड़ावा (शेखावाटी) मे मास्टर कालीचरण शर्मा की अध्यक्षता मे सेवा समितियो का गठन किया गया। जयपुर राज्य ने इसे एक आतंकवादी गतिविधि समझा और मास्टर कालीचरण शर्मा और प्यारेलाल गुप्त को गिरफ्तार कर लिया गया और साथ ही इन्हे खेतड़ी तक नंगे पैर चलने के लिए बाध्य किया। इस घटना की गभीर प्रतिक्रिया हुई और न केवल शेखावाटी मे बल्कि कलकत्ता और बबई मे कड़ा विरोध प्रकट किया गया, परिणामस्वरूप थोड़े समय बाद दोनो ही नेताओ को रिहा कर दिया गया। वास्तव मे यह एक राजनीतिक आंदोलन का आरंभ था जो बाद मे आगे चलकर १६३२ मे सीकर आंदोलन के रूप मे प्रकट हुआ।

भरतपुर मे विद्यार्थी आंदोलन

इन वर्षों की एक महत्वपूर्ण घटना राजस्थान मे पहलीबार एक विद्यार्थी आंदोलन होना था। १६२०–२१ मे भरतपुर के विद्यार्थियो ने आंदोलन आरंभ किया। आंदोलनकारियो ने ब्रिटिश सम्राट जार्ज पचम के चित्रो का अपमान किया और इन चित्रो की होली जलाई। विद्यार्थी आंदोलन [redacted] संगठन गोपीलाल यादव और जुगलकिशोर चतुर्वेदी द्वारा किया गया। विद्यार्थियो के मुख्य नारे महात्मा गाधी की जय और भारत माता की जय थे। तत्कालीन समय मे इन नारो ने भरतपुर मे हलचल मचादी। आंदोलनकारियो ने विभिन्न सभाओ एव जुलूस का भी आयोजन किया। साथ ही साथ गाधी टोपी और खादी पहनने पर भी बल दिया। इसी समय राष्ट्रीय वीणा नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ जो राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थी। जुगलकिशोर चतुर्वेदी के द्वारा पुस्तक को वितरित करने का प्रयत्न किया गया परतु शीघ्र ही राज्य सरकार के द्वारा यह पुस्तक जब्त कर ली गई।

इस प्रकार कांग्रेस के जन्म से लेकर १६१६ तक जिस प्रकार उत्तर भारत मे क्रांतिकारी एव आतंकवादी आंदोलनो का बोलबाला रहा उसमे

राजस्थान ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। १९२०–२१ में जब महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन प्रारम्भ किया तब भी राजस्थान उससे प्रभावित हुए बिना न रह पाया। यह राजस्थान के प्राचीन इतिहास के अनुरूप था। राजस्थान वीरता, शौर्य और साहस की भूमि रहा है। उपर्युक्त वर्षों में राजस्थान के क्रान्तिकारी नेताओं ने अपना योगदान देकर इसी परंपरा का निर्वाह किया।

५

भील–आन्दोलन

राजस्थान में राजनीतिक जागृति के इतिहास में भील आन्दोलन का अपना एक विशेष महत्त्व है। राजस्थान के बांसवाड़ा, डूंगरपुर और सिरोही प्रदेशों में भील बहुसंख्या में रहे हैं। प्राचीन भारत के इतिहास में भी भीलों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस दृष्टि से इससे पहले कि हम राजस्थान में भील आन्दोलन की विवेचना करें, अधिक उपयुक्त यह होगा कि पहले हम भीलों की प्रकृति और उनके चरित्र का अध्ययन करें।

भील, उनकी प्रकृति और चरित्र

भील भारत की प्राचीनतम जातियों में से एक मानी जाती है। १९४१ की जनगणना के अनुसार भारत में उनकी जनसंख्या लगभग दो करोड़ है। भीलों की उत्पत्ति को लेकर विभिन्न प्रकार की किंवदन्तियां प्रचलित हैं। बाणभट्ट कृत कादम्बरी के अनुसार भील शब्द का उपयोग प्राचीन संस्कृत और पाली साहित्य में भी मिलता है। रामायण में भील शब्द का उपयोग सम्भवतः सर्वप्रथम माना जाता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार भील शब्द की उत्पत्ति बिल्ला शब्द से हुई है। कर्नल टाड इन्हें वन पुत्र अथवा जंगली शिशु के नाम से पुकारता है। एक अन्य किंवदन्ति के अनुसार भील महादेव के बीज से उत्पन्न हुए हैं। कुछ भी हो राजस्थान में भीलों का विशेष योगदान रहा है। महाराणा प्रताप की सेना में अधिकांश भील थे और उन्होंने मुगल आक्रमण से रक्षा करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भील अन्धविश्वासी होते हैं और भूतप्रेतों से बचने के लिए अपने सीधे हाथ पर विभिन्न प्रकार के चित्र बनवाते हैं। भील भोपाओं में विश्वास करते हैं और उन्हीं के माध्यम से भूतप्रेत को भगाते हैं। वास्तव में यह एक बहुत ही अबोध जाति है और आर्थिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा वर्ग रहा है, परन्तु इस सब के बावजूद भील एक साहसी और वफादार जाति है। इनके मुख्य हथियार तीर और कमान हैं। वास्तव में भील एक सच्चा मित्र भी है, यदि भील को प्रसन्न कर दिया जाय तो वह सदैव वफादार रहेगा। परन्तु यदि उसे अप्रसन्न कर दिया जाय तो वह बहुत खतरनाक भी सिद्ध हो सकता है। अनेक शताब्दियों से भीलों का शोषण किया जाता रहा है यही कारण है कि उनमें राजनीतिक चेतना का विकास अन्य जातियों के साथ साथ नहीं हो पाया है, फिर भी वे अपने रीति रिवाज और परम्पराओं के प्रति बहुत अधिक सजग हैं और उसका उल्लंघन करना उन्हें रुचिपूर्ण नहीं लगता। यही कारण है कि जब किसी कानून के द्वारा उनके रीति-रिवाज और परम्पराओं का उल्लंघन हुआ है तो उन्होंने सदैव कानून की अवहेलना करने का प्रयत्न किया है। उदाहरणार्थ १८ वीं शताब्दी में उन्होंने मराठों के विरुद्ध संघर्ष किया तो १६ वीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। यह अन्य बात है कि कर्नल टॉड की सफल कूटनीति के परिणामस्वरूप १२ मई १८२५ को भीलों और ब्रिटिश सरकार के मध्य एक समझौता हो गया जिसके अनुसार भीलों की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि वे चोर डाकू अथवा ब्रिटिश सरकार के शत्रुओं को कभी शरण नहीं देंगे तथा ईस्ट इंडिया कंपनी के आदेशों का पालन करेंगे।

नए सुधार और भील प्रतिरोध

भील एक स्वतन्त्र जाति रही है। स्वभावतः वे अपने ऊपर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं चाहते। यही कारण है कि १ नवम्बर, १८५८ के पश्चात् जब भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त हो गया और महारानी विक्टोरिया के शासन काल में अनेक सुधार आयोजित किए गए तो भीलों ने इसे अपने अधिकारों का हनन समझा और तदनुसार राज्य अधिकारियों [redacted] आदेशों की अवहेलना की।

१८८१ में सर्वप्रथम कुछ सुधार लागू किए गए जिनके अन्तर्गत भीलों की जनगणना किया जाना, मद्यपान पर नियन्त्रण लगाना भील क्षेत्र में पुलिस

या पुलिस चौकी की स्थापना करना और अन्धविश्वासों पर नियंत्रण लगाना सम्मिलित था। जैसाकि स्पष्ट ही है इन सुधारों को लागू करने का अर्थ युगों-युगों से चली आ रही भील परम्पराओं का उल्लंघन करना था। स्वभावतः इन सुधारों को कार्यान्वित करने पर भील अप्रसन्न हुए। वे इन सुधारों के लाभों को नहीं समझ सके। भील समाज में अनेक प्रकार की अफवाहें फैलाई गयीं। कुछ लोगों के मतानुसार जनगणना का कार्य अफगान युद्ध के लिए धन एकत्रित करना था, कुछ भीलों का विश्वास था कि जनगणना के माध्यम से स्वस्थ भीलों को सेना में भर्ती करके अफगान मोर्चे पर भेजा जाएगा। कुछ अन्य लोगों का विश्वास था कि इस जनगणना के द्वारा स्थूलकाय स्त्रियाँ मोटे युवकों को और पतली दुबली स्त्रियां पतले दुबले युवकों को दी जाएंगी। इन समस्त घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि जैसे ही १८८१ में सुधार लागू किए गए भीलों ने उनका विद्रोह कर दिया। मेवाड़ में भील विद्रोह का पहला समाचार राजस्थान में गवर्नर जनरल के एजेन्ट को २५ मार्च, १८८१ को मिला। समाचार में कहा गया था कि बड़ापाल के थानेदार ने बखूनाथाल की भूमि सम्बन्धी वाद विवाद के निपटाने में जुलाने के लिए एक सिपाही भेजा था। परन्तु भील उत्तेजित हो उठे उन्होंने सवार को मार डाला और लगभग तीन हजार भीलों ने बड़ेपाल के थाने को घेर लिया और थानेदार सहित ११ व्यक्तियों की हत्या कर दी गई। भीलों ने उदयपुर खेरवाड़ मार्ग को भी काट दिया और थाने व रामी महाजनों की दुकान को आग लगा दी। महाराणा मेवाड़ ने स्थिति पर काबू पाने के लिए तत्काल एक सैनिक टुकड़ी भेजी, परन्तु इसी बीच सलूम्बर के भीलों ने भी विद्रोह कर दिया और स्थिति इतनी अधिक गम्भीर हो गई कि ब्रिटिश सरकार ने एजेन्ट गवर्नर जनरल को आदेश दिया कि वह तत्काल उदयपुर पहुंचे और कार्यवाही का स्वयं निर्देशन करे। थानेदार और अन्य व्यक्तियों की मृत्यु जिन परिस्थितियों में हुई उस पर टिप्पणी करते हुए कर्नल ब्लेयर ने कहा कि बड़ापाल और रखवनाथ के सभी भीलों ने विद्रोह कर दिया है उसके मतानुसार भीलों की प्रमुख मांगें यह हैं कि यदि किसी स्त्री पर डाकिन होने का सन्देह हो तो उसे बिना किसी जांच पड़ताल के तुरन्त मार देने की आज्ञा दी जाय, भील क्षेत्र में पुलिस चौकी की स्थापना न की जाय तथा यदि भीलों में आपस में कोई झगड़ा होता है तो महाराणा मेवाड़ उसमें हस्तक्षेप न करें। भीलों की यह भी मांग थी कि भविष्य में जनगणना जैसा कोई कार्य नहीं किया जाय क्योंकि उनका विश्वास

था कि यह जनगणना का कार्य उन पर कर लगाने की दृष्टि से किया जा रहा है। कर्नल कोथर के अनुसार मेवाड़ के अधिकारियों ने बहुत ही अनुत्तरदायी ढग से स्थिति को सभालने की कोशिश की। घटना की जाच स्वय कर्नल ल्नेयर ने ही की। भीलों का कहना था कि बिना किसी कारण से मेवाड राज्य की सेनाग्रो ने उन पर गोलिया चलायी और निरपराधी व्यक्तियों की हत्या की गई। कर्नल ल्नेयर ने भीलों को परामर्श दिया कि उन्हें मेवाड के अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए। तदनुसार लगभग १०० भील रावबनाथ मे एकत्रित हुए जहा राज्य अधिकारी भी उपस्थित थे। कर्नल ल्नेयर के अनुसार बातचीत सन्तोष जनक ढग से चल रही थी कि इसी समय राज्य-अधिकारी साधनदास ने भीलों से एक प्रश्न पूछा तुम लोग समझौता क्यों नहीं करते और इसके साथ साथ ही राज्य के कुछ सिपाही बन्दूकों को भरने लगे। यह देखते ही भील जो कि निहत्थे थे भाग खड़े हुए और इसी समय एक राज्य कर्मचारी ने गोली चला दी। परिणामत समस्त भील जाति महाराणा के विरुद्ध विद्रोह मे शामिल हो गई। अन्तत १६ अप्रेल, १८८१ को महाराणा मेवाड के व्यक्तिगत हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप भीलो और राज्य-अधिकारियों के मध्य समझौता हुआ जिसमे भीलों की सभी माग (अर्थात् जनगणना कार्य स्थगित कर दिया जाय थानदार और अन्य सिपाहियो की हत्या करने वाले भीलो को क्षमादान दिया जाय इत्यादि) स्वीकार कर ली गई।

परन्तु इन सबके बावजूद शान्ति और व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकी। १३ जून १८८१ को डूगरपुर मे भीलो द्वारा नौ मकरानियों की निर्मम हत्या कर दी गई। जब राज्य अधिकारी दयानान गिरदावर के नेतृत्व मे स्थिति पर नियन्त्रण करने पहुचे तो उन पर भी तलवारो और तीरों द्वारा आक्रमण किया गया। अन्त भीलो को दबाने के लिए राज्य ने ३०० सैनिक भील क्षेत्र म भेजे गए। जिन्होंने भीलो की झोपड़ी को आग लगा दी और चार भील मार डाले गए तथा अनेक घायल हुए। १६ मार्च, १८८२ को मेवाड़ सैनिको ने व्यापक पैमाने पर कार्यवाही की। अन्तत भीलो को समर्पण करना पड़ा और उन्होंने २८ फरवरी, १८८३ को एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार भीलो ने वचन दिया कि वे सदेह के आधार पर डाकिन मानकर उसकी हत्या नही करेंगे। भीलो ने दाजी जी के नाम पर शपथ ली कि वे समझौते का पालन करेंगे। उपर्युक्त समझौते के परिणामस्वरूप भीलों ने अपने सभी अस्त्र शस्त्र राज्य अधिकारियों के हवाले कर दिए और अपने पास केवल तीर

बनाए रखें। भीलों ने यह भी वचन दिया कि वे २१०० रु० जुर्माने के रूप में महाराणा मेवाड़ को अदा करेंगे और एक या डेढ़ महीने में अपराधियों की हत्या करने वाले और डकैती पर आक्रमण करने वाले अभियुक्तों को राज्य अधिकारियों के सुपुर्द कर देंगे। इस समझौते के परिणामस्वरूप मेवाड़ राज्य में शांति स्थापित हो जा सकी। ब्रिटिश सरकार ने महाराणा को परामर्श दिया कि वह भीलों की समस्याओं का हल करने में व्यक्तिगत रूप से रुचि लें। निःसंदेह १८८१ और १८८२ में भील विद्रोह का अंत सहायता के बल पर दबा दिया गया था। परन्तु इस शासकों की सफलता का एक कारण यह भी था कि ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक साथ विद्रोह नहीं किया था और उनका नेतृत्व किसी योग्य एवं शक्तिशाली नेता के हाथों में नहीं था। सौभाग्य से १९२२ में मोतीलाल तेजावत ने भीलों का नेतृत्व किया और उनमें राजनैतिक चेतना एवं अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न की।

मोतीलाल तेजावत और भील-आन्दोलन

१९२१-२२ में मेवाड़ क्षेत्र और स्थानों जैसे ईडर, डूंगरपुर, सिरोही और दांता आदि स्थानों पर भील आन्दोलन पुनः पनपा। आन्दोलन का मुख्य कारण भूराजस्व की वसूली और जमीन संबंधी शोषण किया जाना था। भीलों की मुख्य मांग यह थी कि भूराजस्व निर्धारण की विभिन्न पद्धतियों के स्थान पर समूचे भील क्षेत्र में एक ही पद्धति अपनाई जाए। जनवरी १९२२ में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में लगभग ५००० भीलों ने जिनमें से लगभग १८०० हथियार बन्द थे, अपनी मांगें स्वीकार कराने के लिए पोशीना में एकत्रित हुए। मोतीलाल तेजावत ने सिरोही जिले के डाला और बड़ावली गांव के भीलों को लगान पद्धति के विरुद्ध शक्तिशाली संगठित किया और इस प्रकार मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में पहली बार मेवाड़, सिरोही डूंगरपुर, पोशीना और ईडर के भील एक साथ संगठित हुए और उन्होंने राज्य सरकार और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया। भील मोतीलाल तेजावत को अपना मसीहा मानते थे जो उनके लिए देवदूत के समान था। इस भील आन्दोलन को राज्य और ब्रिटिश सरकार ने अपनी सत्ता के लिए चुनौती समझा और यही कारण है कि ईडर महाराजा ने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार भीलों को संगठित किया गया और मोतीलाल तेजावत को शरण देना या संरक्षण देना अथवा ईडर राज्य की सीमा में मोतीलाल तेजावत को आने देना अपराध घोषित कर दिया गया।

इमी प्रकार सिरोही मे भी भील आदोलन धीरे-धीरे तेज होता जा रहा था। वातावरण मे व्याप्त तनाव को कम करने के लिए भील समुदाय के निमत्रण पर विजयसिंह को आमन्त्रित किया। भील इस बात पर सहमत हो गए थे कि वे राज्य अधिकारियो के साथ बातचीत करेंगे और अपनी कठिनाइयां उनके सम्मुख रखेंगे, परन्तु राज्य की ओर से दमन-चक्र का सहारा लिया गया। इमी बीच महात्मा गाधी की ओर से मणीलाल कोठारी सिरोही पहुचे जिन्होंने सफलतापूर्वक मोतीलाल तेजावत और राजस्थान मे एजेन्ट गवर्नर जनरल हालेण्ड को आपसी बातचीत के लिए राजी कर लिया, परन्तु राजपूताना एजेन्सी मे पुन अपने वचन का निर्वाह नहीं किया और ८ मई, १९२२ को भूला और बलोलिया नामक दो भील गावो को आग लगा दी, साथ ही साथ रोहरा तहसील के शातिपूर्ण भीलों पर पुलिस ने गोली चलाई। विजयसिंह पथिक पर भी मुकदमा चलाने का फैसला किया गया। पुलिस के अत्याचारो की यह कहानी अजमेर म राजस्थान सेवा सघ के पास ६ मई, १९२२ को पहुची। दूसरे दिन अधिकाश समाचार पत्रो मे भीलो पर ढाये जा रहे अत्याचारों का वर्णन प्रकाशित था। राजस्थान सेवा सघ की ओर से सत्य भक्त और रामनारायण चौधरी को स्थिति का अध्ययन करने को भेजा गया। वे लोग १५ मई, १९२२ को बलोलिया पहुचे जहा इनको अनेक पचो और नागरिको ने पुलिस द्वारा किए गए बर्बर अत्याचारों की दर्दनाक कहानी सुनाई। इसके अतिरिक्त सेवा सघ के प्रतिनिधियो ने लगभग ११५ अन्य साथियों के बयान भी लिए, इसके अतिरिक्त १३८ भीलों ने अपने बयान अलग से दर्ज कराए। यदि सेवा सघ की रिपोर्ट को सही माना जाय तो ३२५ परिवार पुलिस के द्वारा तहस नहस कर दिए गए, १८०० नर नारियो की हत्या की गई, ६४० मकानों को आग लगा दी या नष्ट कर दिया गया, ७०८५ मन अनाज को नष्ट कर दिया, ६०० बैलगाडिया जला दी गई, १०८ पशुओं को मार डाला गया या ले जाया गया और लगभग दस हजार रुपए की सम्पत्ति नष्ट की गई। भीलो पर ढाए गए इन अत्याचारो ने उन्हे अपने नागरिक अधिकारो के प्रति जागरूक बनाया और इस प्रकार ये अभिशाप भी उनके लिए वरदान साबित हुए।

परन्तु इस निर्मम दमन चक्र के बावजूद भील आदोलन को पूरी तरह नहीं दबाया जा सका। मोतीलाल तेजावत का भीलों पर अभी भी उतना ही प्रभाव था। वास्तव में वही उनके सुख-दुःख का साथी था। तेजावत ने अब

भीलों ने वैसे वस्त्र धारण करने शुरू कर दिए और १९३१ के आरम्भ में उसने एकी आन्दोलन शुरू किया, जिससे कि भीलों को पुनर्गठित किया जा सके। ईडर प्रजामण्डल भील आन्दोलन में अब रुचि लेने लगा। इस प्रकार मोतीलाल तेजावत के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर ब्रिटिश सरकार और राज्य सरकारें चिन्तित हो उठीं। मोतीलाल तेजावत भूमिगत रहकर आन्दोलन का नेतृत्व कर रहा था, क्योंकि ब्रिटेन और राज्य की सरकारें उसे पकड़ने की हर सम्भव कोशिश कर रही थीं। मोतीलाल तेजावत की गतिविधियों को कुचलने के लिए ४ जून, १९३१ को उसके विरुद्ध एक गिरफ्तारी का वारंट जारी किया गया और बड़े ही नाटकीय ढंग से ईडर पुलिस के एक सिपाही ने तेजावत को उस समय गिरफ्तार कर लिया जब वह ईडर स्थित खेड़ा मन्दिर में एक भील सभा में भाग लेने जा रहा था। मोतीलाल तेजावत को जुलाई १९२९ में मेवाड़ राज्य को सौंप दिया गया। मेवाड़ सरकार ने बिना मुकदमा चलाए और बिना अभियोग लगाए लगभग ६ वर्ष तक तेजावत को केन्द्रीय कारावास उदयपुर में बन्द रखा। तेजावत की रिहाई के अनेक प्रयत्न किए गए परन्तु सफलता नहीं मिली।

३ नवम्बर, १९३४ को मणीलाल कोठारी के द्वारा तेजावत की रिहाई के लिए प्रयत्न शुरू किए गए। मणीलाल कोठारी ने उदयपुर महाराणा के प्रधानमंत्री धर्म नारायण और ब्रिटिश रेजीडेन्ट कर्नल बेथम से मोतीलाल तेजावत की रिहाई का अनुरोध किया, परन्तु मेवाड़ सरकार बिना शर्त तेजावत की रिहाई के लिए तैयार नहीं थी। मेवाड़ सरकार की मांग थी कि तेजावत को तभी रिहा किया जा सकेगा जबकि वह यह वचन दे कि वह राज्य विरोधी गतिविधियों में भाग नहीं लेगा और बिना महाराणा की अनुमति के मेवाड़ प्रदेश से बाहर नहीं जायगा। मणीलाल कोठारी ने मोतीलाल तेजावत से भी भेंट की परन्तु उसने सशर्त रिहा होने से इन्कार कर दिया। अन्तत तेजावत इस शर्त पर रिहा होने के लिए तैयार हो गया कि ब्रिटिश सरकार यह घोषणा करे कि उसने कोई अपराध नहीं किया है और दूसरे तेजावत के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने वालों के खिलाफ उसे कार्यवाही करने का अधिकार हो। राज्य सरकार ने इन दोनों ही मांगों को स्वीकार कर लिया अतः १६ अप्रेल १९३५ को मोतीलाल तेजावत ने वचन दिया कि वह बिना मेवाड़ राज्य की अनुमति के मेवाड़ राज्य से बाहर नहीं जाएगा और राज्य विरोधी कोई कार्य नहीं करेगा। इसकी एवज में राज्य सरकार की ओर से भी यह आश्वासन दिया

गया कि तेजावत को अच्छे चरित्र का प्रमाण पत्र दिया जायगा और उन व्यक्तियों के विरुद्ध जिन्होंने उसका अपमान किया है—के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार होगा। मोतीलाल तेजावत ने यह भी माग की कि यदि सरकार उसे किसी कार्य के उपयुक्त समझती है तो वह उसे स्वीकार कर लेगा। तदनुसार २३ अप्रेल १६३६ को उदयपुर केन्द्रीय कारागृह से मोतीलाल तेजावत को रिहा कर दिया गया। उससे यह पूछा गया कि अब वह किस प्रकार का कार्य करना पसन्द करेगा। तेजावत ने विचार प्रकट किया कि वह खादी का प्रचार और किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करना चाहता है परन्तु महाराणा उदयपुर ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया, उनका कहना था कि तेजावत को सिरोही और सामी जातियों के मध्य काम करना चाहिए जो कि शान्ति और व्यवस्था के लिए खतरनाक बन रही हैं।

१६४२ में भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान मेवाड़ में तेजावत को पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में ३ फरवरी १६४३ को तेजावत को पुनः रिहा कर दिया गया जहां जनता ने उसका भव्य स्वागत किया।

भीलों में राजनीतिक चेतना जागृत करने और उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए वनवासी सेवा संघ की भी स्थापना की गई। १६४० में वनवासी सेवा संघ ने डूंगरपुर भाग में एक प्रदर्शनी आयोजित की जिसमें देश की आर्थिक और सामाजिक स्थिति का चित्रण किया गया था। इस संघ का मुख्य कार्य भीलों के आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाना था और उनमें फैले हुए अन्धविश्वास को दूर करना था। निसन्देह इस दिशा में वनवासी सेवा संघ का कार्य अत्यन्त सराहनीय था।



६

राजस्थान में राजनीतिक आन्दोलन और राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना (१९२५–१९३९)

भारतीय अधिनियम १९१९ और महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन का न केवल ब्रिटिश भारत पर ही प्रभाव पड़ा था अपितु भारतीय राज्यों की जनता भी प्रभावित हुई थी। इसीलिए १९२८ से १९३९ तक राजस्थान में भी प्रजा आन्दोलन हुए जिनके द्वारा विभिन्न राज्यों में राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना और उत्तरदायी सरकार की माँग की गई। निम्नांकित पंक्तियों में इन्हीं आन्दोलनों के इतिहास को विवेचित करने का प्रयत्न किया गया है, जिनके परिणाम स्वरूप अन्त में राजस्थान के विभिन्न राज्यों में भी उत्तरदायी शासन स्थापित हुआ। विषय की महत्ता और पाठकों की सुविधा को देखते हुए हमने प्रत्येक राज्य का अलग अलग विवेचन करना अधिक उपयुक्त समझा है।

अलवर

१९२५ में अलवर राज्य का राजनीतिक वातावरण बहुत अधिक कुंठित था। किसी भी व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने की न तो स्वतन्त्रता थी और न ही किसी सार्वजनिक सभा का आयोजन किया जा सकता था। यहाँ तक कि राज्य से कोई समाचार पत्र तक नहीं निकलता था। परिणामत

राज्य विरोधी वातावरण धीरे धीरे अपनी चरम सीमा पर पहुचने लगा। मई, १९२५ मे अलवर राज्य की दो तहसीलों थानगाजी और बानसूर के गावों में सरकार द्वारा लागू किए गए नए करो को लेकर एक आदोलन छिड गया। जनता का कहना था कि उन पर पहले ही कर भार बहुत है और अब और अधिक कर नहीं दिए जा सकते। परन्तु महाराजा जयसिंह ने किसानों की स्थिति सुधारने पर कोई ध्यान नही दिया और दमन चक्र का सहारा लिया। १४ मई १९२५ को राज्य की सशस्त्र सेनाओं ने उपर्युक्त दोनों गावों को घेर लिया और बिना किसी चेतावनी के शात किसानो पर गोली चलाई। यहा तक कि स्त्रियो तक को नही छोडा गया और बडे ही निर्लज्जता पूर्ण ढग से उन्हें अपमानित किया गया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस गोलीबारी मे कम से कम ३५३ मकान जलकर नष्ट हो गए जिनमे ७१ पशु भी जीवित जल गए और लगभग ५०००० रुपए से लेकर १००००० रुपए तक की सम्पत्ति लूटी गयी। इसके अतिरिक्त लगभग ९५ व्यक्ति घटनास्थल पर ही मारे गए जबकि २५० से अधिक घायल हुए। इस घटना ने समूचे राज्य में आतक फैला दिया।

परन्तु सरकार की दमन नीति जारी रही। १९२७ २८ मे महाराजा अलवर के आदेश के अन्तर्गत बाहर से आने वाले आधे दर्जन से अधिक समाचार पत्रो के राज्य प्रवेश पर प्रतिबध लगा दिया। आदेश मे यहा तक कहा गया था कि यदि प्रतिबधित समाचार-पत्रो का एक कागज भी किसी नागरिक के पास बरामद हुआ तो उस पर पाच हजार रुपए तक का जुर्माना किया जा सकता है और यदि आवश्यकता हुई तो उसे राज्य से निष्कासित भी किया जा सकता है। इस दमनकारी नीति का परिणाम यह हुआ कि महाराजा जनता में बहुत अधिक अलोकप्रिय हो गए और जब वे सनातन धर्म सभा की एक बैठक मे भाग लेने के लिए पहुचे तो जनता ने शर्म शर्म के नारे लगाए स्थिति यहा तक बिगडी कि महाराजा को पुलिस सरक्षण मे बाहर ले जाया गया।

मेव आंदोलन

राज्य की शिक्षा-नीति के परिणामस्वरूप मुसलमानों मे बहुत अधिक असतोष था। मुसलमानो की माग थी कि राज्य मे कुरान की शिक्षा देने पर प्रतिबध नहीं होना चाहिए और उर्दू माध्यम से भी शिक्षा दी जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। इन मागों के साथ १९३२ में मुस्लिम आदोलन आरम्भ हुआ। महाराजा का कहना था कि वास्तव में मुस्लिम आंदोलन में कोई

सच्चाई नहीं थी। परन्तु आंदोलन धीरे-धीरे बढ़ता गया और राज्य की सीमा के बाहर तक पहुंच गया। स्थिति यहां तक बिगड़ी कि गुड़गांवा और रोहतक में मेव मुसलमानों के जत्थे अलवर राज्य में प्रवेश करने लगे और उन्होंने सीधी कार्यवाही करने तक की धमकी दी। स्थिति को बिगड़ता देखकर महाराजा अलवर ने ब्रिटिश सरकार से तुरन्त सैनिक सहायता भेजने का अनुरोध किया। ब्रिटिश सरकार ने तुरन्त कार्यवाही की और ९ जनवरी १९३३ को ब्रिटिश सेनाएं अलवर पहुंच गयी तथा शीघ्र ही शांति और व्यवस्था स्थापित हो गई। ब्रिटिश सरकार ने महाराजा को परामर्श दिया कि वे ब्रिटिश अधिकारियों को राजस्व मंत्री और महा आरक्षी पुलिस के रूप में नियुक्त करें। परिस्थितियों से बाध्य होकर अनिच्छापूर्वक महाराजा ने अपनी सहमति दे दी।

असल वास्तविकता यह थी कि ब्रिटिश सरकार महाराजा से प्रसन्न नहीं थी। जैसाकि हम देख चुके हैं, महाराजा का दृष्टिकोण ब्रिटिश विरोधी था, यही कारण है कि ब्रिटिश सरकार ने महाराजा से यह अनुरोध किया कि वे अपनी समस्त शक्तियां प्रधान मंत्री एफ सी वाइट को सौंपकर दो वर्ष के लिए राज्य से बाहर चले जाएं अन्यथा उनके विरुद्ध एक आयोग स्थापित किया जायगा, जो उनके कार्यकलापों की जांच करेगा। अन्ततः महाराजा को राज्य छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा और वे इंगलैण्ड चले गए। बाद में अक्टूबर, १९३७ में उन्हें वापिस राज्य में लौटने की अनुमति मिली।

उत्तरदायी सरकार की मांग :

अक्टूबर, १९३७ में जैसे ही महाराजा अलवर राज्य में वापिस लौटे तो लोकप्रिय सरकार की स्थापना की मांग को लेकर आंदोलन छिड़ गया। १९३८ में राज्य में प्रजामण्डल की स्थापना हुई। राज्य सरकार ने दमनकारी नीति का आश्रय लिया और अनेक व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया जिनमें लक्ष्मण स्वरूप त्रिपाठी, प्रधान, कांग्रेस कमेटी, प्रजामण्डल के सचिव हरि नारायण शर्मा और कांग्रेस कमेटी के सचिव राधाचरण गुप्त भी शामिल थे। इन सभी को दो वर्ष के कठोर कारावास का दंड दिया गया। इनके अतिरिक्त दो अन्य कार्यकर्ता इन्द्रसिंह आजाद और नाथूराम मोदी को एक-एक वर्ष के साधारण कारावास का दंड मिला। राज्य की दमनकारी नीति का परिणाम यह हुआ कि समूचे राज्य में एक तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई। स्थिति का अध्ययन करने के लिए हरिभाऊ उपाध्याय ने राज्य की यात्रा की, नागरिकों ने कांग्रेस

के द्वारा हस्तक्षेप करने की भी माग की, परन्तु इसी बीच सितम्बर, १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध छिड गया और परिणामत राज्य का वातावरण एकदम ठण्डा पड गया।

सीकर आंदोलन

अलवर के समान ही सितवर, १९२४ मे सीकर के किसानो पर भी कुछ नए कर लगाए गए। परिणामत उनमे असतोष की आग भडक उठी और उनने यह माग की कि सरकार यह नए कर वापिस ले ले। साथ ही साथ अपनी माग पर जोर देने के लिए किसानो ने एक आदोलन भी प्रारभ किया। रामनारायण चौधरी ने इस आदोलन म सक्रिय रूप से भाग लिया और शेखावाटी म आयोजित ग्राम सभाओं म भाषण दिए। सभवत यही कारण था कि जयपुर राज्य सरकार द्वारा रामनारायण चौधरी को यह आदेश दिया गया कि वह १२ घटे के अन्दर अन्दर जयपुर राज्य की सीमा छोड दे। परतु इन सबके बावजूद आदोलन तेजी से फैलने लगा और इसकी गूज न केवल केंद्रीय विधान सभा मे अपितु ब्रिटिश ससद मे भी सुनाई दी। फलत मई, १९२५ म ठिकाने के जागीरदारो और किसानो के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार किसानो ने फसल के अनुपात मे लाकत (कर) देना स्वीकार किया। परतु यह समझौता अधिक समय तक जीवित नही रह सका क्योकि अधिकारियो ने समझौते की शर्तों का ईमानदारी से पालन नही किया और उन्होने भू-राजस्व की दर १२ रुपये ८ आने प्रति सैकडा एकड से बढ़ा कर २५ रुपये कर दी। परिणामतः २७ फरवरी, १९३० को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया जिसमे किसानो ने अपना यह निश्चय व्यक्त किया कि वे सरकार की दमनकारी नीति के बावजूद उस समय तक बढ़ा हुआ भू राजस्व नही देंगे जबतक कि उनकी मागें स्वीकार नही कर ली जाती।

१९३२ मे अखिल भारत जाट सभा का अधिवेशन झुझुनू मे सपन्न हुआ जिसम अधिकारियो से यह माग की गई थी कि वे किसानो की मागें तुरत स्वीकार कर लें, परतु इसका कोई सफल परिणाम नही निकला। इसी प्रकार १९३५ म सीकर म किसान आदोलन की सफलता के लिए एक जाट महायज्ञ का आयोजन किया गया जिसमे लगभग अस्सी हजार किसानों ने भाग लिया। परतु सरकार की दमनकारी नीति जारी रही और सैकडो जाट किसान

जेल में बंद कर दिए गए। स्वामी नरसिंहदास, मास्टर रतनसिंह और कृष्णलाल जोशी जैसे नेताओं को राज्य से तुरन्त चले जाने के आदेश दिए गए। स्वामी नरसिंहदास और कृष्णलाल जोशी ने आदेश मानने से इंकार कर दिया, परिणामतः उन्हें दो-दो वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया परन्तु आंदोलन फिर भी जारी रहा। मई, १९३५ में कूदी और कूदा में शान्तिपूर्ण किसानों पर पुलिस ने गोली चलाई जिसमें ऐसा विश्वास किया जाता है कि कम से कम १०–१२ व्यक्तियों की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई, लगभग १०० व्यक्ति घायल हुए और अनेक स्त्रियों पर भी प्रहार किए गए।

राव राजा सीकर का निष्कासन :

जिस समय यह किसानों का आंदोलन चल रहा था उसी समय स्थिति ने एक नया मोड़ लिया। कारण यह था कि राव राजा सीकर और महाराजा जयपुर के आपसी संबंध तनावपूर्ण थे। इस तनाव का मुख्य कारण यह था कि महाराजा जयपुर राव राजा के पुत्र राजकुमार हरदयाल सिंह को उसके पिता के संरक्षण से हटाना चाहते थे, सीकर के प्रशासनिक अधिकारी कैप्टन वेब के प्रति राव राजा का असंतोष और जयपुर अधिकारियों द्वारा राव राजा सीकर की गिरफ्तारी का प्रयत्न तथा जयपुर राज्य सशस्त्र पुलिस का सीकर भेजा जाना था। अन्ततः इन सब घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि राव राजा सीकर को विक्षिप्त घोषित करते हुए उन्हें राज्य से निष्कासित कर दिया गया। इस संदर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि जाट आंदोलनकारियों ने राव राजा का समर्थन किया और कैप्टन वेब को हटाने की मांग की। अपनी मांग पर जोर देने के लिए समूचे शहर में हड़ताल भी आयोजित की गई। वातावरण को ठण्डा करने के लिए कर्नल गिलन की अध्यक्षता में एक जांच आयोग की स्थापना की गई जो १० जून, १९३८ को सीकर पहुंचा और जिसने दूसरे ही दिन सीकर के नागरिकों से भेंट की परन्तु नागरिकों ने जांच आयोग को कोई सहयोग नहीं दिया क्योंकि उनका कहना था कि इस प्रकार का आयोग जयपुर महाराजा द्वारा नहीं अपितु भारत सरकार द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए जिससे कि आयोग के सदस्य निष्पक्ष रह कर कार्य कर सकें।

उत्तरदायी सरकार की मांग

१९ जून, १९३८ को ठाकुर बालसिंह की अध्यक्षता में सीकर दिवस

मनाया गया साथ ही उस दिन पूर्ण हड़ताल भी रखी गई। सायंकाल एक सार्वजनिक सभा हुई जिसमें राव राजा के नेतृत्व में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करने की माग की गई परन्तु स्थिति बहुत तेजी से बिगड रही थी। ४ जुलाई, १९३८ को पुलिस कान्स्टेबल जगत पुरोहित और अन्य नागरिक उस समय गोली के निशाने बन गए जबकि जयपुर राज्य की सशस्त्र सेनाओं का प्रतिरोध सीकर नागरिकों के द्वारा किया गया। ५ जुलाई १९३८ को जयपुर सेनाओं के साथ आए हुए राजपूत और सीकर आन्दोलनकारियों के मध्य रेलवे स्टेशन पर जमकर संघर्ष हुआ जिसमे पाच व्यक्ति घटनास्थल पर ही मारे गए और अनेक घायल हुए। सेठ जमनालाल बजाज रामकृष्ण बियानी और सेठ पोद्दार द्वारा शान्ति स्थापना के प्रयत्न किए गए परन्तु असफल रहे। दूसरी ओर जयपुर अधिकारियों ने और कड़ा रुख अपनाया यहा तक कि सीकर राज्य के राव के प्राइवेट सेक्रेटरी तक को गिरफ्तार कर लिया गया। परिणामतः स्थिति बहुत अधिक नाजुक हो गई। पुलिस गोलीकांड और नागरिकों की गिरफ्तारी पर चर्चा करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लदन मे कहा था कि पूरे मामले की न्यायिक जाच होना आवश्यक है। पंडित नेहरू के मतानुसार अब अधिकाश देशी राज्यों की उपयोगिता समाप्त हो चुकी है और उन्हें बदलती हुई स्थिति के अनुसार अपने को परिवर्तित करना चाहिए। स्थिति उस समय और भी अधिक खराब हो गई जब जयपुर के अधिकारियों ने सीकर के नागरिकों को ४८ घंटे का नोटिस देते हुए यह धमकी दी कि या तो वे शहर के दरवाजे खोल दें अन्यथा ताकत का इस्तेमाल किया जायगा। परन्तु स्थिति इस समय सुधरी जब नागरिकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए २१ जुलाई १९३८ को महाराजा जयपुर ने गृहमंत्री अचरोल के ठाकुर हरिसिंह और बिसाऊ के ठाकुर बिशनसिंह के साथ सीकर की यात्रा की। राव राजा सीकर ने बिना शर्त महाराजा जयपुर से क्षमा मागी और अपनी समस्त शक्तिया जयपुर महाराजा द्वारा नियुक्त प्रशासक को सौंप देने का और प्रशासन मे हस्तक्षेप न करने का निश्चय किया। परिणाम यह हुआ कि राव राजा सीकर के विरुद्ध जो जाच आयोग बिठाया गया था उसको समाप्त कर दिया गया इस प्रकार सीकर की स्थिति मे नाटकीय ढंग से परिवर्तन हुआ।

जयपुर

जयपुर मे भी महाराजा के निरकुश शासन के विरुद्ध धीरे धीरे असन्तोष बढ़ता जा रहा था जिसकी पहली झलक जयपुर शहर में १ सितंबर

१६२७ को देहल को मिला। इसी दिन राज्य के हजारों नागरिकों ने राज्य मे व्याप्त भ्रष्टाचार और नए करो के विरुद्ध आंदोलन किया। पुलिस ने गोली चलाई जिसमे एक मारा गया और पान पुलिसमैनो सहित ३७ व्यक्ति घायल हो गए स्थिति यहा तक बिगडी कि ब्रिटिश रेजीडेंट को सेना तक बुलाना पड़ी। जनता इतनी अधिक उत्तेजित हो गई कि उसने नगर कोतवाली पर भी आक्रमण कर दिया तथा वहा तैनात समस्त पुलिस टुकडी को घेर लिया परिणामत पुलिस ने गोली चलाई जिसमे जन बार्डर मारा गया और दो घायल हो गए। २ सितबर, १६२७ को सायकाल एक सार्वजनिक सभा आयोजित की गई जहा पुलिस गोलीकाड की निंदा करते हुए निष्पक्ष जाच की माग की गई और साथ ही साथ एक उत्तरदायी सरकार की भी माग की गई तथा १३ प्रस्ताव पारित किए गए। ५ दिना तक नगर मे हड़ताल रही और ६ सितबर १६२७ को उसी समय समाप्त हुई जब ब्रिटिश रेजीडेंट ने यह आश्वासन दिया कि वह स्वय स्थिति की जाच करेगा।

मोतीलाल दिवस समारोह

परन्तु ५ अप्रैल १६३१ को जब मोतीलाल दिवस मनाया जा रहा था तो एक बार पुन गडबडी शुरु हुई। गडबडी का कारण यह था कि राज्य सरकार ने मोतीलाल दिवस समारोह को मनाने की अनुमति नही दी और दमन चक्र का सहारा लिया। गुलाबचन्द्र चौधरी कुंदनलाल और किशोरसिंह खादी कार्यकर्ताओ सहित अनेक व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हे विभिन्न अवधि के लिए जेल भेज दिया गया। इस प्रकार जब राज्य सरकार ने सभी राजनीतिक गतिविधियो को कुचलना जारी रखा तो अन्तत १६३७ में राष्ट्रवादियों ने जयपुर प्रजामण्डल की स्थापना की।

जयपुर प्रजामण्डल और उसकी गतिविधिया

प्रजामण्डल का मुख्य उद्देश्य उत्तरदायी सरकार की स्थापना नागरिकों को उनके प्राथमिक अधिकार दिलाना और राज्य की बहुमुखी प्रगति करना था। दूसरे शब्दो मे प्रजामण्डल ने राज्य-सरकार को स्पष्ट रूप मे बता दिया था कि जनता राज्य की प्रतिक्रियावादी नीति से अत्यधिक असन्तुष्ट है। इसीलिए प्रजामण्डल ने राज्य को चेतावनी देते हुए कहा कि यदि सरकार शांति और व्यवस्था बनाए रखना चाहती है तो इसे समय के अनुसार चलना चाहिए। परन्तु जब राज्य अधिकारियों ने प्रजामण्डल की इस चेतावनी की

ओर कोई ध्यान नहीं दिया तो प्रजामण्डल के द्वारा एक आंदोलन चलाया गया जिसकी मुख्य मांगें यह थी कि एक विधान सभा की तत्काल स्थापना की जाय, बिना पूर्व सूचना के नागरिकों को एकत्रित होने का अधिकार हो, प्रेस को स्वतन्त्रता दी जाय स्थानीय नागरिकों की सुविधा के लिए एक एम्पलायमेंट एक्सचेंज की स्थापना की जाय, लागबाग प्रबंध घोषित किया जाय और अकाल से प्रभावित क्षेत्रों में भू-राजस्व की वसूली स्थगित कर दी जाय परन्तु राज्य ने दमनकारी नीति का सहारा लिया और उसके प्रत्युत्तर में जनता ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया। आंदोलन को कुचलने के लिए राज्य ने जमनालाल बजाज के जयपुर में प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगा दिया परन्तु जमनालाल बजाज ने घोषणा की कि वे फरवरी, १९३९ को राज्य के इस आदेश का उल्लंघन करते हुए सत्याग्रह करेंगे। स्थिति इतनी अधिक विस्फोटक बनी कि महात्मा गांधी ने अपने बयान में यहां तक कहा कि यदि जयपुर के अधिकारियों ने अपना दृष्टिकोण नहीं बदला तो कांग्रेस के सम्मुख कोई कड़ा कदम उठाने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं रह जायगा। वास्तव में सविनय अवज्ञा आंदोलन के शुरू होने का कारण जयपुर के प्रधानमन्त्री सर बीचम का तानाशाही पूर्ण रवैया था। प्रजामण्डल की गतिविधियों पर अपने विचार प्रकट करते हुए सर बीचम ने कहा था कि राज्य किसी भी मण्डल या संस्था का यह अधिकार स्वीकार नहीं कर सकता कि वह जनता की कठिनाइयों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है "भारतीय राज्यों में अभी ऐसा करने का समय नहीं आया है। परिणामतः सेठ जमना लाल बजाज के नेतृत्व में १ फरवरी, १९३९ को पुन सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ किया गया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जमना लाल बजाज और मण्डल कार्यकारिणी के सदस्यों सहित लगभग ५०० व्यक्ति गिरफ्तार हुए। सविनय अवज्ञा आंदोलन १६ मार्च, १९३९ को तभी समाप्त हुआ जबकि राज्य ने प्रजामण्डल को कानून सम्मत संघ के रूप में मान्यता देना स्वीकार कर लिया और सभी गिरफ्तार व्यक्तियों को रिहा कर दिया।

भरतपुर

राज्य की भू राजस्व नीति को लेकर १९२४ से ही भरतपुर में किसानों में असंतोष भड़क रहा था, परन्तु राज्य की ओर से इस असंतोष को दूर करने का कोई प्रयास नहीं किया गया बल्कि दमनकारी नीति के द्वारा

उसे कुचल देने का प्रयत्न किया गया। सरकार की नीति के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए १ अप्रेल से १२ अप्रेल, १९२७ के मध्य अनेक सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया, जिनमें रविन्द्रनाथ टैगोर बी० जे० पटेल, पंडित मदनमोहन मालवीय और चान्दकरण शारदा जैसे राष्ट्रीय नेताओं ने भाषण दिए। राज्य की नीति के परिणामस्वरूप न केवल शान्ति और व्यवस्था को ही खतरा पैदा हो गया था अपितु राज्य के ऊपर कर्ज भी बहुत अधिक हो गया था अत ब्रिटिश सरकार ने भरतपुर महाराजा को परामर्श दिया कि वे अपनी समस्त शक्तियां ब्रिटिश दीवान को सौंप दें या फिर एक जांच आयोग का सामना करें जो राज्य की वर्तमान स्थिति और महाराजा के उत्तरदायित्व के संबंध में जांच पड़ताल करेगा। अतः महाराजा ने मजबूर होकर ब्रिटिश दीवान मैकेन्जी को अपनी समस्त शक्तियां ६ फरवरी, १९२८ को सौंप दी।

मैकेंजी का आगमन और आंदोलन का प्रारम्भ होना

सत्ता सम्भालते ही मैकेंजी ने चार राज्य अधिकारियों को भ्रष्टाचार के आरोप में पदमुक्त कर दिया। इस घटना ने राज्य के वातावरण को बहुत अधिक तनावपूर्ण बना दिया। १९२९ में भरतपुर पीपुल्स एसोसिएशन की स्थापना की गई। साथ ही साथ राजस्थान स्टेट पीपुल्स कान्फ्रेंस ने भी अपना अगला अधिवेशन १९२९ में भरतपुर में ही करने का निश्चय किया। भरतपुर का ब्रिटिश दीवान इन राजनीतिक गतिविधियों को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं था, इसीलिए १३ जनवरी १९२९ को भरतपुर पीपुल्स एसोसिएशन के सचिव देशराज को उनके गांव जुरेहा में गिरफ्तार कर लिया गया और भरतपुर तक लगभग ४५ मील बिना भोजन दिए हुए पैदल चलने के लिए बाध्य किया गया। एसोसिएशन के अध्यक्ष गोपीलाल यादव जो कि सेंट जोन्स कालेज आगरा में एम० ए० का विद्यार्थी था—के गिरफ्तारी के वारंट जारी कर दिए गए। गयाप्रसाद चौधरी और लाला गंगासहाय के मकानों की तलाशी ली गई और अनेक लोगों को आपत्तिजनक भाषण देने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। इस प्रकार की घटनाओं ने राज्य में विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी और जनता ने ब्रिटिश दीवान को तुरत हटाने की माग की परन्तु राज्य में आतंक फैलाने की दृष्टि से ब्रिटिश दीवान ने सभी प्रकार के प्रदर्शन, जुलूस और राजनीतिक भाषणों पर पाबन्दी लगा दी।

जाट महासभा-आंदोलन

इन परिस्थितियो मे अखिल भारत जाट महासभा ने एक प्रस्ताव पारित करते हुए वाईसराय से भरतपुर म हस्तक्षेप करने की अपील की और साथ ही चेतावनी दी कि यदि भरतपुर के नागरिको की मागो को स्वीकार नही किया गया तो सविनय अवज्ञा आदोलन आरम्भ किया जायगा। ११ मई, १६२८ को दिन म बारह बजे जाट महासभा का एक प्रतिनिधि मडल शिमला मे भारत सरकार क पालिटिकल सैक्रेटरी से मिला, जिन्होने आश्वासन दिया कि महासभा की मागो पर सहानुभूति पूर्वक विचार किया जायगा। यद्यपि यह आश्वासन कभी पूरा नही हुआ। परिणामत गोरीशकर मित्तल के नेतृत्व मे एक प्रतिनिधि मण्डल २० सितबर १६३७ को भरतपुर रेलवे स्टेशन पर पडित जवाहरलाल नेहरू से मिला। जिला काग्रेस कमेटी आगरा के निर्देशन में एक मण्डल कमेटी की भी स्थापना की गई। राज्य से माग की गई कि वह प्रजामडल को कानूनी मान्यता प्रदान करे परतु राज्य सरकार ने यह माग मानने से इकार कर दिया और अपने दमनकारी कृत्यो को जारी रखा। परिणामत राज्य मे सविनय अवज्ञा आदोलन आरभ हुआ और कुछ ही समय म गिरफ्तार व्यक्तियो की सख्या ४७३ तक पहुच गई। अतत दिसबर, १६३६ म राज्य ने प्रजामडल को कानूनी मान्यता प्रदान कर दी और इस प्रकार सविनय अवज्ञा आदोलन सफलतापूर्वक समाप्त हो गया।

बीकानेर

अन्य राज्यो के समान ही राज्य म निरकुश शासन पद्धति विद्यमान थी। समूचे राज्य म भ्रष्टाचार का बोलबाला था और जनता स्वच्छ प्रशासन की माग कर रही थी परन्तु राज्य की ओर से समूचे राज्य की सीमाओ मे सभी प्रकार के समाचार पत्रो राजनीति से सबधित पुस्तको और चित्रो पर भी इस आधार पर रोक लगा दी गई थी कि इनमे आतकवादी साहित्य होता है। राज्य की दमनकारी नीति का पहला शिकार ७ मर्च, १६३१ को पचायत बोर्ड का सरपच रामनारायण सेठ हुआ जिसको पुलिस ने इसलिए बुरी तरह पीटा क्योकि उसने एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना और बेगार प्रथा की समाप्ति की माग की थी। राज्य म आतक फैलाने की दृष्टि से महात्मा गाधी की जय जैसे नारो पर भी प्रतिबध लगा दिया गया।

बीकानेर षडयन्त्र-काण्ड

बीकानेर में स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए १९०७ ई० में स्वामी गोपालदास के द्वारा चूरू में सर्व हितकारिणी सभा की स्थापना की गई थी। धीरे धीरे नागरिकों में राजनैतिक चेतना विकसित होती जा रही थी पर राज्य सरकार घबरा उठी और उसने सेठ अमरनाथ वकील अर्जुन लाल सेठी और चांदकरण शारदा को राज्य से निष्कासित कर दिया। परन्तु इस दमनकारी नीति के बावजूद भारत के सभी समाचार-पत्रों में राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार की कड़ी आलोचना की गई। अनेक समाचार-पत्रों में राज्य के गृहमन्त्री महाराजा मानधाता सिंह पर अत्याचार के आरोप लगाए गए और उनके नाम खुले पत्र प्रकाशित हुए। १९३२ में इंग्लैंड में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने भी भाग लिया। इस अवसर पर 'बीकानेर प्रशासन' शीर्षक के अन्तर्गत एक पुस्तिका प्रकाशित की गई जो द्वितीय कांग्रेस के प्रतिनिधियों और ब्रिटिश संसद सदस्यों में वितरित की गई। इस पुस्तिका में महाराजा गंगासिंह के निरंकुश शासन का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया था। परिणामतः राज्य सरकार बौखला उठी और सत्यनारायण वकील, खूबराम, स्वामी गोपालदास, चन्दनमल, बद्रीप्रसाद, सोहनलाल, प्यारेलाल और लक्ष्मीचन्द सुराना को गिरफ्तार कर लिया गया। दुर्भाग्य से लक्ष्मीचन्द सुराना बाद में मुखबिर बन गया। इन व्यक्तियों पर अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट का मुकदमा चलाया गया। राज्य सरकार की ओर से यह तर्क दिया गया कि सत्यनारायण वकील और उसके साथियों द्वारा विभिन्न इण्डिया में गुप्त पत्र लिखे गए हैं, और इस प्रकार बीकानेर राज्य को बदनाम किया गया है। अन्त में अदालत ने उपर्युक्त सभी व्यक्तियों को अभियुक्त मान लिया और उन्हें सैशन सुपुर्द कर दिया जिसमें १४ जनवरी, १९३४ को मुकदमे का फैसला हुआ जिसमें सातों अभियुक्तों को छः महीने से लेकर तीन वर्ष तक के कारावास की सजा सुनाई गई। बाद में महाराजा के पुत्र के जन्म-समारोह पर पंडित प्यारेलाल और पंडित सोहनलाल को रिहा कर दिया गया जिनका जनता द्वारा भव्य स्वागत किया गया।

जोधपुर -

जोधपुर में भी राज्य की निरंकुश व्यवस्था के विरुद्ध मारवाड़ हित-

कारिणी सभा के द्वारा जयनारायण व्यास के नेतृत्व मे १६२५ म आदोलन आरभ हुआ। वाइसराय के नाम अनेक खुले पत्र भी लिखे गए। आन्दोलन का मुख्य कारण यह था कि नागरिको को किसी भी प्रकार के भाषण देने अथवा लेख लिखने की स्वतन्त्रता नही थी और राज्य का समूचा प्रशासन प्रधान मत्री सरसुखदेव के नेतृत्व म पूर्णतया भ्रष्टाचारी हो गया था। ११ सितबर १६२५ को जोधपुर म एक सावजनिक सभा का आयोजन किया गया जिसम तानाशाहीपूर्ण शासन की समाप्ति की माग की गई। सुखदेव प्रसाद की नीतियो की कटु आलोचना करते हुए महाराजा स यह अनुरोध किया गया कि वे सुखदेव प्रसाद को अविलम्ब अपने पद से मुक्त करद। ब्रिटिश रेजीडेंट ने सुखदेव प्रसाद का पक्ष लेते हुए आन्दोलन को केवल आधे दजन व्यक्तियो का आदोलन कहा। परन्तु जब राज्य ने जनता की भावना पर कोई ध्यान नही दिया तो जयनारायण व्यास ने सुनेयाम बिसाना से भू राजस्व न देने की अपील की। १६ सितबर १६२६ को जयनारायण व्यास और आनन्द राज सुराना ने सावजनिक सभा को सबोधित करते हुए पोपनबाई की पोल नामक पुस्तक वितरित की जिसम प्रशासन की कटु आलोचना की गई थी। अत जयनारायण व्यास आनन्द राज सुराना और भवरलाल सर्राफ को राज्य विरोधी काय करने के आरोप म गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हे तीन वष से पाच वष तक के कारावास की सजा सुनाई गई। जनता के द्वारा भी इस फमले का कड़ा विरोध किया गया यहा तक कि पुलिस को लाठी चाज करना पड़ा जिसमे अनेक व्यक्ति घायल हुए। लगभग १० व्यक्ति गिरफ्तार भी किए गए जिनमे कुछ विद्यार्थी भी शामिल थे।

सविनय अवज्ञा आदोलन आरभ

१६३१ म जयनारायण व्यास और अन्य व्यक्तियो की रिहाई के साथ साथ ही सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ हुआ। १० मई १६३१ को जोधपुर युवा सगठन द्वारा आयोजित एक सावजनिक सभा म स्वदेशी वस्त्र धारण करने विदेशी कपडे का बहिष्कार करन और विदेशी शराब की दुकानों के सामने धरना देने का निश्चय किया गया। साथ ही साथ नागरिको को नागरिक एव राजनीतिक अधिकार दिए जान बेगार और लागबाग को समाप्त करने तथा राज्य म उत्तरदायी शासन स्थापित करने की माग की गई। राज्य ने पुन दमन चक्र तेजी स घमाना प्रारभ किया और जयनारायण व्यास मानमल गणेशनाथ व्यास अभयमल मेहता

और जोधपुर प्रजा परिषद् के अनेक सदस्यों को आपत्तिजनक सामग्री वितरित करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया परन्तु इससे जन-उत्तेजना और अधिक बढ़ी, यहां तक कि २६ जनवरी, १६३२ को मारवाड़ हितकारिणी सभा को गैर कानूनी संगठन घोषित किया गया और छगनराज चौपासनी वाला सहित अनेक नागरिक गिरफ्तार कर लिए गए। राज्य कर्मचारियों तक को चेतावनी दी गई कि वे किसी भी आंदोलन में भाग न लें अन्यथा उन्हें बर्खास्त कर दिया जायगा।

६ मार्च १६३२ को राज्य द्वारा एक विज्ञप्ति जारी की गई जिसमें नागरिकों से किसी भी आंदोलन में भाग न लेने के लिए आग्रह किया गया था—दंड के रूप में छः महीने का कारावास और जुर्माना किए जाने का प्रावधान भी था। १६३४ में मारवाड़ पब्लिक सोसाइटी आर्डीनेंस जारी किया गया, जिसमें नागरिकों पर और भी अधिक प्रतिबन्ध लगा दिए गए।

प्रजामंडल की स्थापना :

परन्तु राज्य की दमनकारी नीति के बावजूद १६३४ में मारवाड़ प्रजा मंडल की स्थापना की गई जिसका एकमात्र उद्देश्य जनता की नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करना और राज्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना करना था। १० मार्च १६३६ को स्थिति का अध्ययन करने के लिए जवाहरलाल नेहरू ने जोधपुर की यात्रा की। एक स्वागत समारोह में बोलते हुए नेहरू जी ने जोधपुर के नागरिकों से अपील की कि वे अपने आपको ब्रिटेन के विरुद्ध भारत के संघर्ष का एक अभिन्न अंग समझें। इसी बीच राज्य सरकार ने प्रजामंडल को गैर कानूनी घोषित कर दिया अतः "नागरिक अधिकार रक्षक सभा" के नाम से एक नए संगठन की स्थापना की गई। जब मई-जून, १६३६ में राज्य सरकार ने विद्यार्थियों की फीस में वृद्धि की तो इस संगठन ने विद्यार्थियों का नेतृत्व करते हुए आंदोलन किया और २१ जून, १६३६ को शिक्षा दिवस मनाया। अंततः राज्य सरकार को झुकना पड़ा और फीस वृद्धि वापस लेनी पड़ी। जुलाई, १६३६ में 'नागरिक अधिकार रक्षक सभा' द्वारा जनता को नागरिक अधिकार दिए जाने और विधान सभा की स्थापना की मांग की गई परन्तु आंदोलन को कुचलने की दृष्टि से २१ सितंबर १६३६ को छगनराज चौपासनीवाला, मानमल जैन और अभयमल जैन को गिरफ्तार करके क्रमशः बाली, दौलतपुरा और पर्वतसर के किलों में एक वर्ष के लिए

नजरबंद कर दिया गया। अब केवल भुवनेश्वर प्रसाद शर्मा ही सत्याग्रहियों के एकमात्र नेता बचे थे। परन्तु उन्हें भी नवम्बर, १९३७ में गिरफ्तार कर लिया गया। अब क्योंकि मारवाड़ प्रजामण्डल और नागरिक अधिकार रक्षक सभा गैर कानूनी संगठन घोषित किए जा चुके थे। अतः १९३८ में मारवाड़ लोक परिषद् के नाम एक नई संस्था की स्थापना की गई। १९४० में मारवाड़ लोक परिषद् द्वारा महाराजा के नेतृत्व में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की मांग को लेकर आंदोलन आरम्भ किया गया।

उदयपुर

अन्य राज्यों के समान ही उदयपुर में भी राज्य के निरंकुश शासन के विरुद्ध जन असन्तोष उमड़ रहा था। ब्रिटिश सरकार के प्रेरित करने पर महाराणा उदयपुर ने राजपूतों के नाम एक अपील प्रसारित करते हुए अनुरोध किया कि वे सविनय अवज्ञा आंदोलन से बिल्कुल दूर रहें। परन्तु महाराणा की यह अपील अधिक प्रभावकारी सिद्ध नहीं हो सकी और अन्ततः यह जन असंतोष एक बार फिर बिजौलिया आंदोलन के रूप में प्रकट हुआ।

बिजौलिया आंदोलन

जैसाकि हम पिछले पृष्ठों में देख चुके हैं १९२२ में कर्नल हालैंड की मध्यस्थता के परिणामस्वरूप बिजौलिया का आंदोलन शांतिपूर्वक समाप्त हो गया था परन्तु ठिकाने के जागीरदारों ने समझौते का पालन नहीं किया और बिजौलिया के किसानों पर पुनः नए कर लगाए। परिणामतः बाध्य होकर किसानों को ठिकाने के विरुद्ध पुनः सत्याग्रह आरम्भ करना पड़ा। आंदोलन को गति देने के लिए बिजौलिया किसान पंचायत ने विजयसिंह पथिक को आमंत्रित किया जिन्होंने १८ मई १९२७ को बिजौलिया के निकट ग्वालियर सीमा पर किसानों से भेंट की। पथिक ने परामर्श दिया कि किसानों को बढ़ा हुआ भू राजस्व देने से इन्कार कर देना चाहिए और सरकारी स्कूलों का बहिष्कार करना चाहिए। पथिक के परामर्श पर बिजौलिया पंचायत व किसानों ने अहिंसात्मक साधनों को अपनाने खादी पहनने और मद्यपान न करने का वचन लिया। कई नागरिकों ने पथिक के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के रूप में अपने बाल कटवाए। ये समाचार जब सेटिलमेंट कमिश्नर जी० सी० ट्रेंच को मिले तो वह सशस्त्र सैनिकों को लेकर बिजौलिया की ओर रवाना हुआ जिससे कि गरीब किसानों को आतंकित किया जा सके।

किसानों की अधिकांश जमीन जब्त कर ली गई और उसे नए मालिकों में बांट दिया गया। परन्तु किसानों ने चेतावनी दी कि जो कोई जमीन लेगा वह उससे वैमनस्य मोल लेगा और इस प्रकार बिजौलिया में किसान के अधिकारों की रक्षा करने के लिए वे कटिबद्ध हो गए। आन्दोलन को कुचलने की दृष्टि से महाराणा उदयपुर के आदेश से किसान पंचायत को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया।

हरिभाऊ उपाध्याय की मध्यस्थता

बिजौलिया किसानों की ओर से १९२९ में हरिभाऊ उपाध्याय ने ठिकाने से संपर्क स्थापित किया जिसके परिणामस्वरूप एक समझौता हुआ। इसके अनुसार ठिकाने की ओर से यह आश्वासन दिया गया कि १९२२ के समझौते का पूर्ण रूप से पालन किया जायगा परन्तु १९३१ में ठिकाने के द्वारा समझौते का पुनः उल्लंघन किया गया। अप्रेल, १९३१ में माणिक्यलाल वर्मा के नेतृत्व में किसानों ने जबरदस्ती भूमि पर कब्जा किया और जुताई की। ठिकाने और राज्य के द्वारा दमन-नीति का आश्रय लिया गया और माणिक्यलाल वर्मा व लादूलाल सहित २६ किसानों को पुलिस ने बुरी तरह पीटा परन्तु आन्दोलन फिर भी धीमा नहीं हुआ और ३० अप्रेल, १९३१ को किसानों ने फिर जमीन को जोता, ७ किसान गिरफ्तार किए गए परन्तु २ मई को उन्हें चेतावनी देकर छोड़ दिया गया। इस आन्दोलन के दौरान अनेक स्त्रियों ने भी भाग लिया जिनमें श्रीमती विजया, श्रीमती अंजना, श्रीमती विमलादेवी, श्रीमती दुर्गा, श्रीमती भागीरथी, श्रीमती तुलसी, श्रीमती रमादेवी जोशी और श्रीमती अनुपमा शर्मा ने भाग लेते हुए सत्याग्रह किया तथा बड़े साहस के साथ पुलिस-दमन चक्र का सामना किया। अनेक किसान सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया गया और उन्हें विभिन्न अवधि के कारावास का दंड दिया गया। स्थिति और अधिक न बिगड़े इस दृष्टि से महात्मा गांधी और जमनालाल बजाज से मध्यस्थता करने का अनुरोध किया गया परन्तु दोनों ने ही इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। हरिभाऊ उपाध्याय ने पुलिस के दमन चक्र की जांच करने की मांग की। उधर दूसरी ओर सेठ जमनालाल बजाज ने मेवाड़ की यात्रा की और प्रधान मंत्री सर सुखदेव प्रसाद से भेंट की। जमनालाल बजाज के निर्देश पर २६ जुलाई, १९३१ को शोभाराम गुप्ता ने बिजौलिया की यात्रा की परन्तु उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और पुलिस ने बड़ी निर्ममता से उनकी पिटाई की। परिणामतः आन्दोलन

ने धौर जोर पकडा। मगर प्रधान मंत्री मुखदेवसिंह के इस आश्वासन पर कि बिजौलिया किसानो की जप्त की गई सम्पत्ति और भूमि शीघ्र लौटा दी जायगी, बिजौलिया सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया। इस प्रकार बिजौलिया किसान सत्याग्रह के समुख ठिकाने को झुकना पडा और सत्याग्रहियो की मागें स्वीकार करनी पडी।

उदयपुर मे आदोलन

ऐसा प्रतीत होता है कि बिजौलिया आदोलन का प्रभाव उदयपुर शहर पर भी पडा। ■ जुलाई १९३२ को नए करो के विरोध म उदयपुर के नागरिक पीछोलीघाट मे एकत्रित हुए और उन्होने महाराणा से प्रार्थना की कि नए कर समाप्त किए जाए और पंडित सुखदेव प्रसाद सहित सभी भ्रष्टाचारी अधिकारियो को बर्खास्त कर दिया जाय परन्तु मागें मानने के स्थान पर पुलिस ने भी गोली चलाई जिसके परिणामस्वरूप लगभग ५० व्यक्ति हताहत हुए जिनमे से एक व्यक्ति का शव पिछोला झील म तैरता हुआ मिला। लगभग ३० व्यक्ति गिरफ्तार भी किए गए कि है बिना मुकदमा चलाए जेल भेज दिया गया। बाद मे १३ जुलाई १९३२ को नागरिकों का एक प्रतिनिधि मडल महाराणा से मिला जिन्होने यह आश्वासन दिया कि वे जनता की कठिनाइयो को स्वय देखेंगे।

१९३४ म राज्य का राजनीतिक वातावरण बडा ही दमघोटू था। नागरिक विचाराभिव्यक्ति की स्वतत्रता, सगठन बनाने और स्वतत्रता पूर्वक घूमने फिरने की माग कर रहे थे। परतु मेवाड राज्य प्रशासन इन मागों को मानने के लिए तैयार नही था सन १९३७-३८ मे माणिक्यलाल वर्मा के नेतृत्व म एक सत्याग्रह आदोलन आरभ किया गया और राज्य की दमनकारी नीति के बावजूद अप्रेल १९३८ मे प्रजामडल की स्थापना की गई, यद्यपि इसे राज्य के द्वारा गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। राज्य-पुलिस ने प्रजामडल कार्यालय पर छापा मारा तथा माणिक्यलाल वर्मा और रमेशचन्द्र व्यास को राज्य से निष्कासित कर दिया गया। ३० सितबर १९३८ को मेवाड प्रजा मडल के उपाध्यक्ष भूरेलाल बया को गिरफ्तार कर लिया गया। इन परिस्थितियो म २१ अक्टूबर १९३८ को सविनय अवज्ञा आदोलन प्रारभ किया गया। यह आदोलन शीघ्र ही समूचे राज्य म फैल गया। राज्य के द्वारा सभी प्रकार की सार्वजनिक सभाओ एव सगठनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था

परन्तु इसके बाद चन्द्र मथालाल जोशी द्वारा आयोजित एक सार्वजनिक सभा शान्तिपूर्वक सम्पन्न हुई जिसमें लगभग ३००० व्यक्ति उपस्थित थे। सविनय अवज्ञा आन्दोलन राज्य के अन्य भागों में भी फैलने लगा। ११ अक्टूबर, १९३८ को नाथद्वारा में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जहाँ पाँच व्यक्ति गिरफ्तार हुए। २३ अगस्त, १९३८ को मेवाड़ प्रजामण्डल की कार्यकारिणी के सदस्यों का चुनाव हुआ जिसमें माणिक्यलाल वर्मा, शोभालाल गुप्त, प्रोफेसर प्रेमनारायण माथुर, सरदारसिंह कोठारी और डाक्टर प्रभालाल शामिल थे। यह भी निश्चय किया गया कि १७ सितम्बर को सत्याग्रहियों का एक जत्था अजमेर से भेजा जायगा। इस समय माणिक्यलाल वर्मा का यह विचार था कि राज्य की दमनकारी नीति को देखते हुए प्रजामण्डल को शान्तिपूर्ण नीति के स्थान पर आतंकवादी नीति अपनानी चाहिए परन्तु हरिभाऊ उपाध्याय ने इसका विरोध किया। वे गाँधीवादी एवं अहिंसक साधनों में विश्वास करते थे।

२ फरवरी, १९३९ को माणिक्यलाल वर्मा ने राज्य के आदेश का उल्लंघन करते हुए मेवाड़ सीमा में प्रवेश किया। उन्हें जहाजपुर तहसील में गिरफ्तार कर लिया गया जहाँ वे अपने अन्य सहयोगियों के साथ मेवाड़ प्रजामण्डल के गीत गा रहे थे और उसकी जय जयकार कर रहे थे। माणिक्यलाल वर्मा को एक वर्ष के कठोर कारावास और २५१ रुपये के जुर्माने का दंड दिया गया, जुर्माना अदा न करने पर ३ माह के कठोर कारावास का प्रावधान था। कुल मिला कर समूचे राज्य में ३८८ व्यक्ति गिरफ्तार किए गए जिनमें से ३५ व्यक्तियों को विभिन्न अवधि के कारावास का दंड दिया गया। जमनालाल बजाज व हरविलास शारदा ने अनुरोध किया कि वे मेवाड़ के प्रधान मंत्री धर्म नारायण को प्रजामंडल से समझौता करने के लिए राजी करलें। अंततः महात्मा गाँधी के परामर्श पर ३ मार्च, १९३९ को सत्याग्रह-आंदोलन स्थगित कर दिया गया।

अजमेर (१९२५–१९३९)

ब्रिटिश भारत प्रान्त होने के कारण अजमेर राजस्थान के राजनीतिक आंदोलनों का केंद्र बना। १९२५ में भारत सरकार के द्वारा साईमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की गई। अजमेर की कांग्रेस कमेटी ने भी यह निश्चय किया कि साईमन कमीशन की यात्रा के दौरान उसका बहिष्कार किया जाय।

१९२१ से १९२९ तक अजमेर में कोई महत्त्वपूर्ण घटना नहीं घटी परन्तु जब १२ मार्च १९३० को महात्मा गांधी ने दाण्डीकूच आरम्भ किया तो इससे अजमेर भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। अजमेर कांग्रेस कमेटी को सरकार के द्वारा गैर कानूनी संगठन घोषित कर दिया गया और इसके साथ ही अन्य राज्यों के समान अजमेर में भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ हुआ। विशाल सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया और विदेशी कपड़े एवं शराब की दुकानों पर धरना दिया गया। इन सत्याग्रहियों में रामनारायण चौधरी, गौरीशंकर भार्गव, कृष्णगोपाल गर्ग, बालकृष्ण कौल, मास्टर लक्ष्मीनारायण, जमालुद्दीन, मथुर और चन्द्रभान शर्मा प्रमुख थे। इस सविनय अवज्ञा आन्दोलन में गवर्नमेंट कालेज अजमेर के विद्यार्थियों का योगदान अत्यन्त सराहनीय था। विद्यार्थियों ने कालेज में भी सत्याग्रह किया। इन विद्यार्थियों में डाक्टर गोपीनाथ शर्मा भी शामिल थे जिन्हें सत्याग्रह करने के आरोप में कालेज से निकाल दिया गया। इसी समय एक और महत्त्वपूर्ण घटना भी घटी। कुछ विद्यार्थी राष्ट्रीय झंडा लिए हुए क्यों कोलज अजमेर की चारदीवारी में से गुजरे कि इसी बीच कालेज के वाइस प्रिंसिपल कर्नल हाउसन ने विद्यार्थियों को प्रताड़ित किया और राष्ट्रीय झंडे का अपमान करते हुए उसके टुकड़े टुकड़े कर दिए। परन्तु जब रामनारायण चौधरी ने इस घटना के प्रति मेयो कालेज के प्रिंसिपल और वाइस प्रिंसिपल से कड़ा विरोध प्रकट किया तो उन्होंने अगले ही दिन लिखित रूप में क्षमा मांगी। मार्च १९३१ में गांधी इर्विन समझौता हुआ जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित करने का निश्चय किया तदनुसार अजमेर में भी आन्दोलन स्थगित हो गया।

राजस्थान में आतंकवादी गतिविधियां

परन्तु गांधी इर्विन-समझौते के बावजूद देश के युवा आतंकवादियों को सन्तुष्ट नहीं किया जा सका। सम्पूर्ण उत्तर भारत में आतंकवाद की एक लहर दौड़ गयी और राजस्थान भी अछूता नहीं रह सका। पं० ज्वाला प्रसाद शर्मा के नेतृत्व में राजस्थान में आतंकवादी गतिविधियों का केन्द्र अजमेर बना। पंडित ज्वाला प्रसाद शर्मा की शिक्षा-दीक्षा दयानन्द स्कूल एवं गवर्नमेंट कालेज अजमेर में हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ज्वाला प्रसाद पर दयानन्द स्कूल के एक अन्य विद्यार्थी रामसिंह का अपार प्रभाव पड़ा और १९२८ में वे

आतंकवादी गतिविधियों में सम्मिलित हो गए। इस तथ्य की पुष्टि इस घटना से होती है कि ज्वालाप्रसाद ने रामसिंह और फूलचंद के साथ डी० ए० वी० स्कूल के एक चपरासी और सस्ता साहित्य मंडल अजमेर के लिपिक से २ बन्दूकें और कारतूस खरीदे थे तथा दूदू ही के जंगल में लगभग ६ महीने का प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

अजमेर के कमिश्नर की हत्या का प्रयत्न

अप्रेल, १९३२ में ज्वालाप्रसाद और उनके सहयोगियों ने ब्रिटिश अधिकारियों को आतंकित करने के लिए अजमेर के चीफ कमिश्नर की हत्या करने का षडयंत्र रचा। ज्वालाप्रसाद के एक सहयोगी रामचन्द्र बापट ने चीफ कमिश्नर की हत्या करने का असफल प्रयत्न किया। इस घटना ने समूचे अजमेर शहर में सनसनी मचा दिया। बापट पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया और भारतीय दंड संहिता की धारा ३०७ के अन्तर्गत उस पर मुकदमा चलाया गया।

राजकीय कालेज अजमेर के चपरासी को लूटने का असफल प्रयत्न

राजस्थान के आतंकवादी दल को धन की कमी का सामना करना पड़ रहा था अतः ज्वालाप्रसाद तथा उनके अन्य सहयोगी जगदीश दत्त, मदनगोपाल, हेमचन्द और रामचन्द्र बापट ने मिलकर एक योजना तैयार की जिसके अनुसार राजकीय कालेज अजमेर के चपरासी को उस समय लूटना था जब वह इम्पीरियल बैंक अजमेर से कालेज-स्टाफ का वेतन लेकर लौट रहा हो। योजना के अनुसार जैसे ही चपरासी वेतन लेकर बैंक से बाहर निकलेगा हेमचन्द जिसके पास रिवाल्वर थी वह चपरासी को धक्का देकर गिरा देगा और इसी समय ज्वालाप्रसाद रुपये का थैला छीन लेगा। सहायता के लिए ज्वालाप्रसाद ने भी एक पिस्तौल अपने पास रख ली। यह भी निश्चय किया कि रामचन्द्र बापट और मदनगोपाल रुपये का थैला लेकर भाग जाएंगे। एक अन्य सहयोगी जगदीश दत्त को थोड़ी दूर पर तैनात किया गया जो पुलिस के आने की सूचना दे सके। तदनुसार गिरोह के सदस्यों ने अपने वस्त्र बदले और अजमेर शिक्षा बोर्ड के कार्यालय के समीप अपना अपना स्थान ले लिया कालेज का चपरासी वेतन की राशि लेकर बाहर आया। हेमचन्द ने उसे धक्का दिया परन्तु ज्वालाप्रसाद रुपये का थैला छीनने में असफल रहा। रामचन्द्र बापट ने जोर से चिल्ला कर हेमचन्द को आगाह किया कि वह थैला

छीन ले परन्तु वह भी असफल रहा इसी बीच पुलिस आ गई परिणामत सभी आतंकवादी भाग गए।

वायसराय की हत्या का असफल प्रयत्न

१६३४ के आरम्भ म ज्वालाप्रसाद ने वायसराय की बीकानेर यात्रा के दौरान हत्या करने की पुन एक योजना तैयार की। ज्वालाप्रसाद ने २ रिवाल्वरो एव कारतूसो की व्यवस्था की और अपने सहयोगी रामचद्र बापट के साथ बीकानेर रवाना हो गए परन्तु पुलिस की सतर्कता के परिणामस्वरूप योजना क्रियान्वित नही की जा सकी।

मेयो कालेज बम केस

१६३४ के मध्य मे एक बार फिर वायसराय की हत्या करने का प्रयत्न किया गया। वायसराय अपनी यात्रा के दौरान अजमेर से होकर गुजरने वाले थे। अत यह निश्चित किया गया कि इस यात्रा के दौरान वायसराय की हत्या कर दी जाए। आतंकवादियो के सामने सबसे बडी समस्या यह थी कि हथियारो को कहा छुपाया जाए क्योंकि यह निश्चित था कि वायसराय की यात्रा के दौरान पुलिस की कडी व्यवस्था रहेगी अत आतंकवादियो ने यह निश्चित किया कि मेयो कालेज के समीप के मकान जो ग्रीष्मावकाश के कारण खाली पडे थे म हथियार छिपा दिए जाए। इस काय को करने का उत्तरदायित्व फतहचद नामक आतंकवादी को सौंपा गया जो हथियारों से भरे तीन थैले साइकिल पर रखकर मेयो कालेज के समीपस्थ मकानों म रख आया परतु छ सात दिन के पश्चात् ही पुलिस ने छापा मारा और हथियार बरामद कर लिए। फतहचद गिरफ्तार कर लिया गया।

जयपुर के सूरजबक्श को धमकी भरा पत्र

आतंकवादियो को धन की निरन्तर कमी हो रही थी अत ज्वाला प्रसाद और उनक सहयोगी रामदास शर्मासिंह और नृसिंहदास न जयपुर के सेठ सूरजबक्श बियानी के नाम एक धमकी भरा पत्र भेजा जिसमे यह कहा गया था कि पत्र मिलने ही ५००) रुपये आय समाज मदिर मे रख आए अन्यथा गभीर परिणाम भुगतने होगे। सूरजबक्श ने पुलिस को सूचना दे दी और इस प्रकार यह योजना असफल हो गई।

तत्पश्चात बाबा नृसिंहदास और कुमारानंद ने मिलकर शेखावाटी

में डाका डालने की योजना बनाई परन्तु किसी मुखबिर ने सी० आई० डी० को सूचना दे दी और इस प्रकार यह योजना भी विफल हो गई।

डोगरा गोलीकाण्ड

४ अप्रेल, १९३५ को अजमेर के उप अधीक्षक, पुलिस पी० एन० डोगरा और सी० आई० डी० के सबइन्सपेक्टर खलीलउद्दीन की हत्या करने का प्रयत्न किया गया। ज्वालाप्रसाद के नेतृत्व में एक योजना तैयार की गई थी जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि पी० एन० डोगरा की हत्या कर दी जाए क्योंकि वे ब्रिटिश समर्थक विचारधारा के थे। योजना के अनुसार तय हुआ कि मांगीलाल नामक आतंकवादी डोगरा को सिनेमा दिखाने के लिए ले जायगा और जब वह सिनेमा देखकर वापस लौट रहा होगा तब रामसिंह नामक एक अन्य आतंकवादी उसे गोली मार देगा। तदनुसार मांगीलाल और रमेशचन्द्र व्यास जो कि स्थानीय समाचार पत्र का रिपोर्टर था ने डोगरा को सुझाव दिया कि 'जोहर ए शमशीर' नामक चलचित्र देखा जाय जो कि बहुत दिलचस्प था। डोगरा खलीलउद्दीन और मांगीलाल सिनेमा देखने गए। वापिस लौटते समय मांगीलाल तो सिनेमा में ही रह गया और डोगरा और खलीलउद्दीन साइकिल पर घर लौट पड़े। रास्ते में रामसिंह ने अपने रिवाल्वर से डोगरा पर गोली चलाई जो कि उनके हाथ पर लगी और खलीलउद्दीन गिर पड़े। रामसिंह के द्वारा २ गोलियां और चलाई गईं जिसमें से एक खलीलउद्दीन के हाथ में लगी तत्पश्चात् आतंकवादी भाग खड़े हुए। काफी खोजबीन के पश्चात् रामसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस को दिए गए अपने बयान में रामसिंह ने इस तथ्य का उद्घाटन किया कि ये समूची योजना ज्वालाप्रसाद द्वारा तैयार की गई थी और उसी ने रिवाल्वर भी दिया था।

ज्वालाप्रसाद की गिरफ्तारी

२६ अप्रेल, १९३५ को ज्वालाप्रसाद गिरफ्तार कर लिए गए उसे २३ सितंबर, १९३५ तक हिरासत में रखा गया। इस हिरासत के दौरान ज्वालाप्रसाद ने अपने भाई कालीचरण को एक गुप्तभाषा में पत्र लिखा जिसमें कालीचरण से यह आग्रह किया गया था कि वह १४ या १५ मई की रात्रि को १२ बजे से २ बजे के मध्य उसे "एक सिगरेट केस और सिगरेट" अर्थात् "रिवाल्वर और कारतूस दे दे। इसी बीच ज्वालाप्रसाद शर्मा ने जेल से

हो एक धमकी भरा पत्र तात्कालिक एस पुलिस अधीक्षक सी आई डी मुमताज़ हुसैन को भेजा जिसमें यह धमकी दी गई थी कि वह गिरफ्तार आतंकवादियों को तत्काल और बिना शर्त रिहा कर दे "अन्यथा उसका भी वही हाल होगा जो डोगरा का हुआ था"। ज्वालाप्रसाद की इन भयकर गतिविधियों को देखते हुए उसे १२ सितंबर, १९३५ को १८१८ के रेगुलेशन अधिनियम के अतर्गत गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली की जेल में भेज दिया गया।

ज्वालाप्रसाद की रिहाई और उसका अजमेर में भव्य स्वागत :

नवबर, १९३८ में भारत सरकार ने ज्वालाप्रसाद को इस शर्त पर रिहा करने का निश्चय किया कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आतंकवादी राजनीति से सबधित नहीं रहेगा और न किसी भी ऐसे सगठन से सहयोग करेगा जो हिंसा में विश्वास रखता हो और साथ ही बिना चीफ कमिश्नर की अनुमति के दिल्ली प्रात की सीमा में दाखिल नहीं होगा। परतु ज्वालाप्रसाद ने सशर्त रिहा होने से इकार कर दिया और भूख हड़ताल प्रारभ कर दी। उसने महात्मा गाधी को भी सूचित किया कि वह सरकार द्वारा प्रस्तावित अपमानजनक शर्तों पर रिहा होने को तैयार नहीं है। अतः महात्मा गाधी के हस्तक्षेप पर १९ मार्च, १९३९ को ज्वालाप्रसाद को दिल्ली जेल से रिहा कर दिया गया।

२२ मार्च, १९३९ को ज्वालाप्रसाद अजमेर पहुचा जहा उसका भव्य स्वागत किया गया। अजमेर रेल्वे स्टेशन से उन्हें एक जुलूस में ले जाया गया जो केसरगज और मदार गेट होता हुआ घासीराम की धर्मशाला पहुचा। जुलूस का नेतृत्व मागीलाल सीताराम वकील, जगन्नाथ, राधावल्लभ और श्यामबिहारी सिंह कर रहे थे तथा जुलूस में "इकलाब जिंदाबाद" "रामसिंह को रिहा करो" और "भगतसिंह, महात्मागाधी और जवाहर लाल नेहरू की जयजयकार" के नारे लगाए जा रहे थे। जब जुलूस घासीराम की धर्मशाला पर पहुचा तो स्वामी कुमारानद ने ज्वालाप्रसाद का आलिंगन कर स्वागत किया।

२२ मार्च, १९३९ को ज्वालाप्रसाद की रिहाई पर मुबारकबाद देने के लिए एक और सभा का आयोजन किया गया जिसका सभापतित्व जयनारायण व्यास ने किया। सभा में अनेक वक्ताओं ने भाषण दिए जिनमें प्रदेश कांग्रेस कमेटी अजमेर के सचिव बाबा नृसिहदास, डा० जे० एल० मुकर्जी,

स्वामी कुमारानंद, रामजीलाल और राधावल्लभ सम्मिलित थे। बाबा नृसिंह-दास ने अपने विचारोत्तेजक भाषण में देशभक्ति की भावना पर बल दिया और यह आग्रह किया कि भारतीयों को जर्मनी व इटली से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए तथा ज्वालाप्रसाद का अनुसरण करना चाहिए। अंत में सभा में एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें ज्वालाप्रसाद शर्मा की बिना शर्त रिहाई पर प्रसन्नता प्रकट की गई।

इस प्रकार जब १९३९ में आतंकवादी गतिविधियां अपनी चरम सीमा पर थी उसी समय द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। महात्मा गांधी की अपील पर ब्रिटिश भारत तथा राजस्थान में सत्याग्रह आंदोलन स्थगित कर दिया गया। एक बार फिर भारतीय राजा महाराजा ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए आगे आए और उन्होंने तन, मन, धन से ब्रिटेन की सहायता की।



७

जागरण और एकीकरण (१९३९–४७)

विभिन्न राज्यो मे प्रजामण्डल की स्थापना का परिणाम यह हुआ कि राजस्थान की देशी रियासतो मे 'उत्तरदायी शासन' की माग की जाने लगी परन्तु १९३९ म द्वितीय महायुद्ध हो जाने के फलस्वरूप जब ब्रिटिश भारत मे आन्दोलन स्थगित हो गया तो इसका प्रभाव राजस्थान पर भी पड़ा। परिणामत राजस्थान मे भी उत्तरदायी शासन की स्थापना की माग को लेकर चलाया जा रहा आदोलन अस्थायी तौर पर स्थगित कर दिया गया। दुर्भाग्य से देशी राजाओ न स्थिति की गम्भीरता को नही समझा वे यही सोचते रहे कि भारत म ब्रिटिश शासन के बने रहने से ही उनका निरकुश राज्य बना रह सकता है।

द्वितीय महायुद्ध और राजस्थान मे राजाओं का दृष्टिकोण —

अगस्त, १९३९ मे यह स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि विश्व द्वितीय महायुद्ध के कगार पर आ पहुचा है। बीकानेर के महाराजा सभवत भारतीय राजाओ में प्रथम थे जिन्होंने ब्रिटेन के सम्राट को सहायता प्रस्ताव प्रस्तुत किया। ५ सितम्बर १९३९ को द्वितीय महायुद्ध प्रारभ होने पर महाराजा बीकानेर ने ब्रिटिश सम्राट को पुन अपनी ओर से सहायता देने के प्रस्ताव को दोहराया और सम्राट के नाम तार भेज कर यह आशा प्रकट की कि ब्रिटेन को महायुद्ध म शीघ्र सफलता मिलेगी। महाराजा बीकानेर ने ब्रिटेन की ओर से महायुद्ध म भाग लेने की इच्छा प्रकट की जिसे ब्रिटेन के द्वारा स्वीकार कर

किया गया। परिणामत २६ अक्टूबर, १९४१ को बीकानेर के महाराजा ने मोर्चे के लिए प्रस्थान किया उनका प्रसिद्ध गंगा रिसाला भी साथ में भेजा गया। इसी प्रकार जयपुर जोधपुर उदयपुर, अलवर, भरतपुर, धौलपुर और कोटा के महाराजाओं ने भी हर समय सहायता देने का प्रस्ताव रखा। महाराजा धौलपुर ने वायुसेना के उन सैनिकों को पुरस्कार देने की घोषणा की जिन्हें युद्ध के दौरान सर्वोत्तम घोषित किए जाएगे।

इस प्रकार जहा तक और राजस्थान की देशी रियासतों के राजाओं ने ब्रिटेन को हर समय सहायता दी वहीं दूसरी ओर ब्रिटेन के विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन चलाए जाने की योजना थी। १९४० के आरम्भ में महात्मा गांधी की अपील पर राजस्थान की देशी रियासतों में व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन प्रारम्भ हुआ। १९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन में राजस्थान ने भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। प्रत्येक राज्य में उत्तरदायी शासन अथवा लोकप्रिय सरकार की स्थापना की माग की जाने लगी। जनता का उत्साह असीम था और इस पृष्ठभूमि में राजस्थान के राज्यो में उत्तरदायी शासन की स्थापना की माग को लेकर चलाए गए आन्दोलन को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया।

अजमेर

ब्रिटिश शासित होने के कारण राजस्थान की समस्त राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र अजमेर बना। २६ जनवरी १९४० को नागरिको ने स्वतन्त्रता दिवस मनाने का निश्चय किया, परन्तु जिलाधीश ने सार्वजनिक सभा करने के लिए अनुमति देने से इन्कार कर दिया। जनता के जोश की सीमा नहीं थी। अत अजमेर के नागरिक और विद्यार्थियो ने ब्रिटिश विरोधी नारे लगाते हुए जिलाधीश के आदेश की अवहेलना की। परिणामत अनेक विद्यार्थियों को गिरफ्तार कर लिया गया जिनमे से १२ विद्यार्थियो को प्रत्येक को ५००० रु० जुर्माना दिए जाने का आदेश मिला। अनेक स्थानो पर पुलिस ने छापे मारे। फरवरी, १९४० मे प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी अजमेर पर छापा मारा गया तथा साथ ही साथ प० ज्वालाप्रसाद शर्मा डा० जे एल मुकर्जी और बाबा नृसिंहदास के मकानो की तलाशी ली गई क्योंकि पुलिस को सूचना मिली थी कि इनके पास रिवाल्वर और कारतूस छिपे हुए हैं। देवीप्रसाद रामेश्वर और श्यामबिहारीसिंह आदि कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार

किया गया। यद्यपि बाद में २ कार्य-कर्ताओं को रिहा कर दिया गया परन्तु अनेक कार्यकर्ताओं को बिना मुकदमा चलाए जेल में बंद रखा गया। १० अप्रेल, १९४० को भारत सुरक्षा अधिनियम, १९३२ के अन्तर्गत अमर प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर और उसके व्यवस्थापक अम्बालाल माथुर के मकानों की तलाशी ली गई। इसका कारण केवल यह था कि पुलिस को ऐसी सूचना प्राप्त हुई थी कि प्रेस कार्यालय में 'उस पार रोशनी' नामक जब्त की गई पुस्तक की प्रतियाँ रखी हुई हैं।

इस तनावपूर्ण वातावरण में ८ अप्रेल से १६ अप्रेल, १९४० तक अजमेर कांग्रेस ने राष्ट्रीय सप्ताह मनाने का निश्चय किया। इस सप्ताह के दौरान खादी की एक प्रदर्शनी आयोजित की गई। ५० फीट ऊंचे खम्भे पर कांग्रेस का ध्वज फहराया गया। इस प्रदर्शनी को देखने के लिए जनता उमड़ पड़ी। साथ ही साथ विभिन्न आम सभाओं का भी आयोजन किया गया जिसमें दिल्ली की एक राजनैतिक कार्यकर्ता श्रीमती प्रभाती झीडवानिया ने अपने भाषण में भारतीय नवयुवकों से आग्रह किया कि वे जलियां वाले बाग के शहीदों से शिक्षा लें। जनता पर इस भाषण का इतना प्रभाव पड़ा कि लोगों ने अपने खून से हस्ताक्षर करके प्रतिज्ञा की कि वे देश को आजाद कराके ही चैन लेंगे। ब्रिटिश नौकरशाही यह सब कुछ बर्दाश्त नहीं कर सकी और अजमेर कमिश्नर ने दण्ड संहिता की धारा १४४ के अन्तर्गत एक आदेश जारी किया जिसमें यह कहा गया था कि एक घंटे के अन्दर-अन्दर राष्ट्रीय झण्डा उतार लिया जाए और किले की ४०० गज की सीमा के अन्दर प्रवेश न किया जाए, परन्तु प्रदर्शनी के सचिव कृष्णगोपाल गर्ग ने आदेश मानने से इन्कार कर दिया तत्पश्चात् पुलिस ने कार्यवाही की और झंडे को जबर्दस्ती हटा दिया। कृष्ण-गोपाल गर्ग को ४ मास का कठोर कारावास दिया गया। इन समस्त घटनाओं की सूचना महात्मागांधी को भी भेजी गई। जिन्होंने अजमेर कमिश्नर के आदेश की कटु-आलोचना करते हुए कांग्रेस कार्य-कर्ताओं को भी परामर्श दिया कि उन्हें 'कमिश्नर के आदेश का पालन करना चाहिए।'

रेल्वे वर्कशाप में हड़ताल

ब्रिटेन की दमनकारी नीति का परिणाम यह हुआ कि सामान्य जनता में भी ब्रिटिश विरोधी भावना पनपने लगी और इसीलिए अपना विरोध प्रकट करने हेतु १५ अगस्त, १९४१ को अजमेर रेल्वे वर्कशाप के लगभग १०,०००

कर्मचारियों ने 'बैठे रहो' हड़ताल की। ब्रिटिश सरकार इस हड़ताल से इतनी घबरा उठी कि उसने सेना को भी बुला लिया। अंत ३ सितम्बर, १९४१ को हड़ताल वापस [redacted] ली गई।

पंडित ज्वालाप्रसाद की गिरफ्तारी और उनका अजमेर के केन्द्रीय कारागृह से भागना

अजमेर रेलवे वर्कशाप की हुई हड़ताल में ज्वालाप्रसाद शर्मा ने भी सक्रिय योगदान दिया था अत भारत सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत १९ अगस्त, १९४१ को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। चीफ कमिश्नर अजमेर ने भारत सरकार से यह भी प्रार्थना की कि अजमेर में ज्वालाप्रसाद की उपस्थिति स्थानीय आंदोलन को उग्र बना सकती है। अत उन्हें तुरत किसी दूसरे राज्य की जेल में भेज दिया जाए। परन्तु कोई भी दूसरी प्रांतीय सरकार ज्वालाप्रसाद शर्मा को लेने को तैयार नहीं थी अत उन्हें स्थानान्तरित नहीं किया जा सका। १२ नवम्बर, १९४१ को अर्धरात्रि के कुछ ही समय बाद ज्वालाप्रसाद शर्मा ने जेल से भागने का प्रयत्न किया। उन्होंने कमरे के एक रोशनदान में से जो केवल ६½ इंच चौड़ा था निकलकर अपना रास्ता बनाया परन्तु जिस समय वे बाहर निकल रहे थे तो उनके पैर से पास में रखा हुआ मीटि का कनस्तर टकरा गया। परिणामत आवाज सुनकर जेल का मुख्य वार्डर आ पहुंचा उसने देखा कि ज्वालाप्रसाद छत पर खड़े हैं और उनके हाथ में चाकू भी है। मुख्य वार्डर ने ज्वालाप्रसाद को वापस आने को समझाया। ज्वालाप्रसाद इस शर्त पर वापस आने के लिए तैयार हो गए कि वार्डर इस घटना का किसी से भी जिक्र नहीं करेगा और मामले को वहीं दबा देगा। परन्तु उन पर मुकदमा चलाया गया और भारत सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत उन्हें एक वर्ष तीन महीने का कठोर कारावास तथा ५० रुपये जुर्माने की सजा दी गई। जुर्माना अदा न करने पर ३ माह की सजा का प्रावधान था। मजिस्ट्रेट के निर्णय के विरुद्ध ज्वालाप्रसाद ने अपील की जिसके फलस्वरूप १६ फरवरी, १९४२ को उनकी सजा रद्द कर दी गई, परन्तु २५ फरवरी, १९४२ को उनके विरुद्ध एक नया मुकदमा दायर किया गया और ६ मास के कठोर कारावास का दण्ड मिला।

२६ फरवरी, १९४४ को एक अन्य कैदी रघुराज सिंह के साथ ज्वालाप्रसाद ने एक बार फिर भागने का प्रयास किया। दोनों ही कैदी बैरक नं०

में रखे गए थे। इन्होंने बानीवाल बेलने के आल और उसके संभों को लेकर छत पर चढ़ने का सफल प्रयत्न किया और लगभग १० धोतियां अपनी कमर से लपेट कर जेल की छत पर से कूद पड़े। काफी खोजबीन के बावजूद दोनो ही कैदियों को पकड़ने के प्रयास विफल रहे।

सविनय अवज्ञा-आंदोलन

दूसरी ओर "भारत छोड़ो आंदोलन" की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप 'सविनय अवज्ञा-आंदोलन' तेज होता जा रहा था। अप्रैल, १६४३ तक ६४ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया था जिनमें बालकृष्ण कौल, हरिभाऊ उपाध्याय, रामनारायण चौधरी, गोकुल लाल असावा, ऋषि दत्त महता, मुकुटबिहारी लाल भार्गव, लादूराम जोशी श्रीमती गोमती देवी भार्गव, अम्बालाल माथुर और शोभालाल गुप्त भी सम्मिलित थे। बालकृष्ण कौल और गोकुल लाल असावा को जेल अधिकारियों की आज्ञा का उल्लंघन करने के आरोप मे ४ माह के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। इस दण्ड के विरोधस्वरूप बालकृष्ण कौल ने भूख हड़ताल आरंभ कर दी। ब्रिटिश सरकार ने श्रीमती कौल तक को बालकृष्ण से जेल मे मिलने की अनुमति नहीं दी बाद में महात्मा गांधी के हस्तक्षेप पर श्रीमती कौल को अपने पति से मिलने की इजाजत मिली। तत्पश्चात् बालकृष्ण कौल ने भी भूख हड़ताल समाप्त कर दी।

१६४५ मे शिमला कान्फ्रेंस आयोजित की गई। साथ ही १६४६ में भारत की सवैधानिक समस्या का समाधान ढूंढने के लिए कैबीनेट मिशन भारत आया। परिणामस्वरूप ब्रिटिश विरोधी वातावरण ठण्डा हो गया और सविनय अवज्ञा आंदोलन अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया।

जयपुर

अजमेर की घटनाओं का प्रभाव राजस्थान के अन्य राज्यों पर भी पड़ा तथा विभिन्न राज्यों में राजनीतिक आंदोलनों की मुख्य मांग "उत्तरदायी शासन की स्थापना" बनी। समूचे राजस्थान की देशी रियासतों मे जयपुर सबसे अधिक प्रगतिशील राज्य था परन्तु अन्य राज्यो के समान जयपुर मे भी आंदोलन को कुचलने के लिए सरकार ने दमन चक्र का सहारा लिया। १ जनवरी, १६४० को राज्य सरकार के द्वारा एक आदेश जारी किया गया

जिसमें राज्य कर्मचारियों को यह आदेश दिया गया था कि वे राजनीतिक मामलों के प्रसंग में बिलकुल विचार प्रकट न करें। परिणामतः जयपुर प्रजामण्डल ने राज्य की दमनकारी नीति का विरोध करते हुए जनवरी, १६४० में एक प्रस्ताव प्रसारित की जिसने जयपुर राज्य में तुरंत "उत्तरदायी सरकार" स्थापना की मांग की गई। इस घटना ने राज्य के प्रधानमंत्री राजा ज्ञान नाथ को बहुत उत्तेजित कर दिया उन्होंने प्रजामण्डल को "गंभीर परिणाम" भुगतने की धमकी भी दी। फरवरी, १६४० के अंतिम सप्ताह में पुलिस ने प्रजामण्डल के कार्यालय पर छापा मारा और बहुत से कागजात अपने साथ ले गई। ६ मार्च, १६४० को राज्य सरकार द्वारा एक विज्ञप्ति जारी की गई जिसमें प्रजामण्डल को रजिस्टर्ड कराने को कहा गया था। इस घटना ने राज्य में एक नई राजनीतिक स्थिति को जन्म दिया। आखिर में २ अप्रैल, १६४० को राज्य सरकार ने स्वीकार कर लिया कि प्रजामण्डल को अधिकार है कि वह जनता में राजनीतिक जागृति उत्पन्न कर सके और संवैधानिक साधनों के माध्यम से जनता की कठिनाइयों को राज्य सरकार के सम्मुख प्रस्तुत कर सके, परंतु इस स्वीकारोक्ति के बावजूद राज्य ने दमनकारी नीति का परित्याग नहीं किया और प्रजामण्डल की बैठकों में भाग लेने वाले व्यक्तियों को संदेह की निगाह से देखना शुरू कर दिया। दुर्भाग्य से इस समय प्रजामण्डल के सदस्यों और कार्यकर्ताओं में आपसी मतभेद उठ खड़े हुए। चिरंजीलाल अग्रवाल के नेतृत्व में एक नए दल ने जिसे 'प्रजामण्डल प्रगतिशील दल' के नाम से पुकारा गया, जन्म लिया। परिणाम यह हुआ कि आपसी फूट के परिणामस्वरूप जयपुर "भारत छोड़ो आंदोलन" में विशेष योगदान नहीं दे सका।

नवम्बर, १६४१ में सीकर में राजनीतिक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें जयपुर प्रजामण्डल के अध्यक्ष हीरालाल शास्त्री ने यह मांग की कि राज्य सरकार अपनी दमनकारी नीति का तुरंत परित्याग कर दे और प्रजामण्डल की मांग को स्वीकार करते हुए राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाए। इसी समय एक अन्य दल ने भी जन्म लिया जिसे "आजाद मोर्चा" के नाम से जाना जाता है। इस मोर्चे के द्वारा राज्य के निरंकुश शासन के विरुद्ध सत्याग्रह आंदोलन प्रारम्भ किया गया। इस आंदोलन में भाग लेने वालों में मास्टर रामकरण जोशी, बी० एम० देशपाण्डे, ओमदत्त शास्त्री, लादूराम जोशी और हंस डी० राय प्रमुख थे। यह आंदोलन

लगभग डेढ़ वर्ष तक चलता रहा। आंदोलन के दौरान विदेशी शराब और वस्त्रों की दुकानों पर धरने दिए गए और तोड़फोड़ की कार्यवाहियाँ भी हुईं।

संवैधानिक सुधार

२६ अक्टूबर, १९४२ को जयपुर महाराजा ने संवैधानिक सुधारों को लागू करने की दृष्टि से एक विशेष समिति की स्थापना की थी। समिति ने ११० परिच्छेदों (पैरेग्राफ) का अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया परन्तु गैर सरकारी सदस्यों ने इस प्रतिवेदन का विरोध किया। परन्तु इसके फलस्वरूप १९४५ में जयपुर राज्य ने समिति के प्रतिवेदन के आधार पर कुछ सुधार लागू किए। वास्तव में यह 'उत्तरदायी शासन' की स्थापना की ओर एक कदम था। द्विसदनात्मक विधान सभा की स्थापना की गई। प्रतिनिधि सभा में १२५ सदस्य होते थे जिनमें से ५ मनोनीत, २१ ठिकाने के सरदारों म [redacted] निर्वाचित एवं २ स्थान व्यवसायियों स्त्रियों और सैनिकों के लिए सुरक्षित थे। इस प्रकार सामान्य स्थान केवल १८ थे। दूसरे सदन में कुल ५१ स्थान थे जिनमें से १४ सदस्यों का मनोनयन करना था, ६ सदस्य ठिकाने [redacted] सरदारों द्वारा निर्वाचित तथा ३ स्थान व्यवसायी स्त्रियों और सैनिकों के लिए तथा ४ स्थान मुसलमानों के लिए सुरक्षित थे। इस प्रकार स्पष्ट था कि प्रस्तावित विधान सभा महाराजा की हां में हां मिलाने वालों की संस्था थी परन्तु इस सब के बावजूद प्रजामण्डल ने चुनावों में भाग लिया तथा उसमें उसे आशातीत सफलता मिली। प्रतिनिधि सभा में से ३१ स्थानों में से २७ स्थानों पर तथा ऊपरी सदन में ३ स्थानों पर प्रजामण्डल का कब्जा हो गया। यह तथ्य इस बात का प्रतीक था कि प्रजामण्डल को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त था।

उदयपुर

फरवरी, १९४१ में उदयपुर राज्य सरकार ने मेवाड़ प्रजामण्डल से प्रतिबंध उठा लिया था। परिणामत प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं को राज्य में "उत्तरदायी सरकार" की स्थापना की मांग करने का पुनः अवसर प्राप्त हुआ। इसी मांग पर बल देने के लिए नवम्बर, १९४१ में माणिक्यलाल वर्मा के सभापतित्व में प्रजामण्डल का प्रथम अधिवेशन उदयपुर में आयोजित किया गया। जिसमें नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की मांग की गई। इस अवसर पर एक खादी प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया जिसका उद्घाटन श्रीमती

निष्पक्षदर्शी परिषद ने किया । इन सब घटनाओं का परिणाम यह हुआ कि राज्य सरकार ने यह अनुभव कर लिया कि अब अधिक समय तक जनता की भावनाओं को नहीं दबाया जा सकता । यही कारण है कि राज्य सरकार के द्वारा यह घोषित किया गया कि प्रतिनिधि सभा की शीघ्र ही घोषणा की जाएगी जिसमें निर्वाचित सदस्यों का बहुमत होगा । साथ ही 'बटवाली कर" वापिस लेने की भी घोषणा की गई ।

सत्याग्रह-आन्दोलन

८ अगस्त, १९४२ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने ब्रिटिश भारत में 'भारत छोड़ो" आन्दोलन आरम्भ किया । इसके साथ ही राजस्थान के विभिन्न राज्यों में भी 'उत्तरदायी सरकार' की स्थापना की माग को लेकर सत्याग्रह आरम्भ हुआ । उदयपुर भी अछूता न रह सका । १० अगस्त, १९४२ को सत्याग्रह करते हुए श्रमिक नेता रमेशचन्द्र व्यास को गिरफ्तार कर लिया गया और जेल भेज दिया गया । २० अगस्त, १९४२ को मेवाड़ प्रजामण्डल के द्वारा एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें राज्य से तुरन्त उत्तरदायी शासन की स्थापना और ब्रिटिश सरकार से सभी संबंध तोड़ लेने की माग की गई थी । इसके प्रत्युत्तर में राज्य ने दमन-नीति का सहारा लिया और २१ अगस्त, १९४२ को माणिक्यलाल वर्मा, मोहनलाल सुखाड़िया, बलवन्तसिंह मेहता सहित १५ सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर लिया गया । इसके साथ ही सम्पूर्ण राज्य में सार्वजनिक सभा करना अथवा भाषण देना या प्रदर्शन करने पर रोक लगा दी गई और प्रजामण्डल को 'गैर कानूनी संगठन" घोषित कर दिया गया शीघ्र ही गिरफ्तार व्यक्तियों की संख्या ५० तक पहुँच गई । यद्यपि वातावरण को ठण्डा करने के लिए कुछ समय बाद अनेक सत्याग्रहियों को रिहा कर दिया गया जिनमें माणिक्यलाल वर्मा, मोहनलाल सुखाड़िया, बलवन्तसिंह मेहता और मोतीलाल तेजावत सम्मिलित थे । ६ सितम्बर, १९४५ को प्रजामण्डल से भी प्रतिबन्ध उठा लिया गया । यद्यपि सार्वजनिक सभाओं पर तथा भाषणों पर प्रतिबन्ध बना रहा । सरकार की इस दमनकारी नीति का परिणाम यह हुआ कि राज्य सरकार के कर्मचारियों तक ने सरकार की नीति के विरुद्ध हड़ताल कर दी । पुलिस ने लाठी चार्ज किया और अनेक व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गए । बाद में राज्य सरकार ने इस आश्वासन पर, कि जनता की कठिनाइयों को शीघ्र दूर किया जाएगा हड़ताल वापिस ले ली गई ।

संवैधानिक सुधार

इन परिस्थितियों में मार्च, १९४७ में राज्य के तत्कालीन प्रधानमन्त्री सर राघवाचार्य ने राज्य में अनेक संवैधानिक सुधारों को लागू करने की घोषणा की। वास्तव में इन सुधारों की कोई उपयोगिता नहीं थी। क्योंकि इन सुधारों के माध्यम से राज्य के निरकुंश शासन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सकता था। फिर भी मेवाड़ प्रजामण्डल ने विधान सभा के चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया और काफी सीटों पर कब्जा करके यह सिद्ध कर दिया कि उसे जनता का भारी समर्थन प्राप्त है।

बीकानेर

राजस्थान के अन्य राज्यों के समान ही बीकानेर में भी उत्तरदायी सरकार की स्थापना की माग को लेकर आन्दोलन चल रहा था। राज्य ने दमनचक्र का सहारा लिया और सभी प्रकार की सार्वजनिक सभाओं एवं भाषणों पर रोक लगा दी परन्तु राज्य की इस दमन नीति के फलस्वरूप आन्दोलन और तेज हो उठा। नवम्बर, १९४१ में द्वितीय महायुद्ध में भाग लेने जाते समय महाराजा गंगासिंह ने कुछ सुधारों को लागू करने की घोषणा की थी परन्तु व्यवहार में इनका कोई विशेष परिणाम नहीं निकला, अन. २६ जुलाई, १९४२ को रघुवरसिंह गोयल के सभापतित्व में बीकानेर प्रजा-परिषद् ने राज्य में 'उत्तरदायी सरकार' की स्थापना की माग को लेकर सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू किया। राज्य ने दमन चक्र को तेजी से घुमाना शुरू किया और रघुवरदयाल गोयल सहित अनेक व्यक्तियों को गिरफ्तार करके उन्हें राज्य से निष्कासित कर दिया, परन्तु २६ अगस्त, १९४४ को रघुवरदयाल गोयल ने अपने अन्य साथियों गंगादास कौशिक तथा दीनदयाल आचार्य के साथ निष्कासन आदेश की अवहेलना करते हुए राज्य में प्रवेश किया। राज्य सरकार ने इन्हें पुन गिरफ्तार कर राज्य से निकाल दिया; परन्तु इन सबके बावजूद राज्य में आन्दोलन जारी रहा। राज्य की दमनकारी नीति पर गहन विचार प्रकट करते हुए ३० जनवरी १९४६ को अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद् में भाषण देते हुए जवाहरलाल नेहरू ने कहा था बीकानेर राज्य अपने निरंकुश शासन के लिए कुख्यात हो चुका है जहां राजनैतिक कैदियों की हालत दयनीय है। मार्च, १९४६ में बीकानेर प्रेस अधिनियम पारित हुआ जिसके अन्दर प्रत्येक समाचार पत्र के लिए यह आवश्यक था कि

यह पत्र से पूर्व राज्य को आश्वासन दें कि यह राज्य विरोधी गतिविधियों में सम्मिलित नहीं होगा। आदेश में यह भी कहा गया था कि कोई भी गैर बीकानेरी व्यक्ति समाचार पत्र का सम्पादक नहीं बन सकेगा। इसी बीच राज्य सरकार के द्वारा यात्राकर विधेयक लागू किया गया जिसके अनुसार 'यदि कोई भी नागरिक बीकानेर राज्य की सीमा से १२० दिन निवास करता है तो उसे यात्रा कर देना होगा।' इस अधिनियम का तीव्र विरोध किया गया। २२ मार्च, १९४६ को समूचे राज्य में हड़ताल आयोजित की गई जिससे राज्य विधान सभा में यात्राकर विधेयक पर विचार करना स्थगित कर दिया और हड़ताल भी वापिस ले ली गई।

किसान-आन्दोलन :

मई, १९४६ में राज्य की दमननीति का विरोध करते हुए राज्य के किसानों ने जबर्दस्त प्रदर्शन किया। इस बार राज्य ने और भी कठोर दमन-चक्र का सहारा लिया। कुम्भाराम आर्य सहित अनेक किसान गिरफ्तार कर लिए गए। १० मई, १९४६ को पुलिस ने रायसिंह नगर गाँव को घेर लिया और वहाँ के शान्तिपूर्ण नागरिकों पर सभी प्रकार के भयंकर अत्याचार किए। सरकार की इस दमन-नीति की न केवल बीकानेर राज्य में बल्कि कलकत्ता, बम्बई और जयपुर तक में कटु आलोचना हुई। ३० जून और १ जुलाई, १९४६ को रायसिंह नगर में देशी राज्य परिषद् का अधिवेशन आयोजित हुआ, परन्तु १ जुलाई, १९४६ को जब परिषद् का एक कार्यकर्ता रेलगाड़ी में बैठने के लिए स्टेशन जा रहा था तो बिना किसी कारण के पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। इस घटना ने वातावरण को उत्तेजित बना दिया। पुलिस की इस दमनकारी नीति का जनता ने जबर्दस्त विरोध किया। जन-विरोध को कुचलने के लिए राज्य ने पहले लाठी चार्ज और बाद में गोली का सहारा लिया। यहाँ तक कि सेना भी बुला ली गई। परिणामत बीरबल सिंह (जो कि एक हरिजन कार्यकर्ता था) सहित ४ व्यक्ति घटनास्थल पर ही मारे गए। १७ जुलाई, १९४६ को समूचे राज्य में बीरबल दिवस मनाया गया और यह माँग की गई कि समस्त राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया जाए और 'रायसिंह नगर' गोली काण्ड की जाँच करवाई जाए। अन्तत ३१ अगस्त, १९४६ को महाराजा शार्दूल सिंह की इस घोषणा पर कि 'राज्य में शीघ्र उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाएगी' राज्य का तनावपूर्ण वातावरण ठण्डा हो गया।

भरतपुर

भरतपुर में आन्दोलन का आरम्भ सन् १६४० में उस समय हुआ जब राज्य के प्रधानमंत्री सर रिचर्ड टेटनहोम ने राष्ट्र ध्वज को फहराना गैर कानूनी घोषित कर दिया। अन्य राज्यों के समान ही भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रभाव भरतपुर पर भी पड़ा और वहां भी १० अगस्त, १६४२ को उत्तरदायी सरकार की मांग को लेकर आंदोलन तीव्र हो उठा। इस आंदोलन के प्रमुख नेता जुगलकिशोर चतुर्वेदी मास्टर आदित्येन्द्र देशराज पंडित रेवतीशरण ठाकुर श्रीवास्तव रमेश स्वामी राजबहादुर और मास्टर गोपीलाल यादव थे। आंदोलन के दौरान विदेशी शराब की दूकानों पर धरना दिया गया और विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। यहां तक कि अनेक स्त्रियों ने गोद में बच्चे लिए हुए अपने आपको गिरफ्तारी के लिए पेश किया। आंदोलन को शान्त करने के लिए महाराजा भरतपुर ने १६४३ में बृज जया प्रतिनिधि सभा की स्थापना की घोषणा की परन्तु भरतपुर प्रजामण्डल ने उस समय तक किसी भी प्रकार का सहयोग देने से इन्कार कर दिया जबतक जनता की सच्ची प्रतिनिधि सभा की स्थापना नहीं की जाती। प्रत्युत्तर में राज्य ने दमनकारी नीति का सहारा लिया और आन्दोलन के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। १ अगस्त १६४५ को आन्दोलन के प्रमुख नेता जुगलकिशोर चतुर्वेदी को एक वर्ष का कारावास और २५० रुपये जुर्माने की सजा सुनाई गई। २४ सितम्बर १६४५ को एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए राजबहादुर ने महाराजा भरतपुर से अनुरोध किया कि उन्हें जनता की मांगें स्वीकार कर लेनी चाहिए और उत्तरदायी शासन की तुरन्त स्थापना करनी चाहिए। अत १६४६ में बसंत दरबार के अवसर पर महाराजा भरतपुर ने लोकप्रिय मंत्रिमण्डल की स्थापना किए जाने की घोषणा की परन्तु प्रजापरिषद् राज्य की मुस्लिम लीग शाखा और किसान सभा ने राज्य के साथ उस समय तक सहयोग से इन्कार कर दिया जबतक कि राज्य में प्रत्यक्ष मत के आधार पर निर्वाचित उत्तरदायी सरकार की स्थापना नहीं कर दी जाती। अपनी मांगों पर बल देने के लिए प्रजा परिषद् ने राजबहादुर वकील और रेवतीशरण के नेतृत्व में ४ फरवरी १६४७ को राष्ट्रीय नारे लगाते हुए काले झण्डों का प्रदर्शन किया।

अगस्त १६४७ में भरतपुर राज्य भारतीय संघ में सम्मिलित हो गए

और १३ सितम्बर, १९४७ को महाराजा भरतपुर के आदेश के अन्तर्गत रेवती-शरण और जुगलकिशोर सहित सभी गिरफ्तार व्यक्तियों को रिहा कर दिया गया।

अलवर :

यद्यपि १९४० में अलवर राज्य के द्वारा अलवर प्रजामण्डल को मान्यता प्रदान कर दी गई थी परन्तु भूमि के मामले को लेकर दोनों ही पक्षों में मतभेद उत्पन्न हो गए और २ जून, १९४१ को प्रजामण्डल के द्वारा 'जागीर माफी प्रजा परिषद्' का आयोजन किया गया जिसमें किसानों को भू-स्वामित्व दिए जाने की मांग की गई। साथ ही यह भी माग की गई कि जागीरदारों के द्वारा ली जाने वाली बेगार समाप्त की जाए और जमीन का जोतने वाला ही जमीन का मालिक समझा जाए। अपनी मागों के सबध में किसानों ने राज्य के अनेक स्थानों पर प्रदर्शन भी किया परन्तु राज्य की दमनकारी नीति के सम्मुख कुछ समय के लिए यह आंदोलन स्थगित हो गया। परन्तु फरवरी १९४६ में प्रजामण्डल के द्वारा एक बार फिर 'उत्तरदायी शासन' की स्थापना की माग को लेकर आंदोलन प्रारम्भ हुआ। शोभाराम, रामजीलाल, कुञ्जबिहारीलाल और हरीनारायण सहित अनेक व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया गया। अक्टूबर, १९४७ में दशहरा के अवसर पर महाराजा अलवर ने राज्य प्रशासनिक परिषद् में २ निर्वाचित सदस्यों को सम्मिलित करने की घोषणा की परन्तु राज्य की जनता इस नाममात्र के सुधार से सतुष्ट नहीं हो सकी। बाद में अलवर राज्य भारतीय सघ में सम्मिलित हो गया और सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर दिया गया।

कोटा :

अन्य राज्यों के समान कोटा में भी 'उत्तरदायी सरकार' की माग की जाने लगी। २६ जनवरी, १९४१ को 'उत्तरदायी सरकार' दिवस मनाया गया जिसमें राज्य प्रशासन से अनुरोध किया गया था कि वह जनता की माग को तुरन्त स्वीकार करके ससदीय शासन की स्थापना करे। नवम्बर, १९४१ में बिगड़ती स्थिति को सभालने के लिए महाराव कोटा ने कुछ सवैधानिक सुधारों की घोषणा की। इन सुधारों के अन्तर्गत एक सविधान का निर्माण किया जाना था और एक विधान परिषद् भी स्थापित की जानी थी। परन्तु राज्य प्रजामण्डल ने इन संवैधानिक सुधारों के साथ सहयोग करने से इसलिए

इन्कार कर दिया क्योंकि इनके माध्यम से नागरिकों को गुमराह करने का प्रयत्न किया गया था।

अगस्त, १६४२ में "भारत छोड़ो आंदोलन" के दौरान कोटा प्रजामण्डल ने भी उत्तरदायी शासन की माग को लेकर सत्याग्रह प्रारम्भ किया। समूचे राज्य में हड़ताल की गई और धरना दिया जाने लगा। राज्य की दमनकारी नीति के फलस्वरूप गिरफ्तार लोगों की संख्या हजारों तक पहुंच गई। जन उत्तेजना इतनी अधिक बढ़ी कि नागरिकों ने शहर के दरवाजे बंद कर दिए और पुलिस कोतवाली में झंडे फहराकर नागरिक शासन अपने हाथ में ले लिया। लगभग ३ दिन तक यही स्थिति रही। बाद में महाराव के इस आश्वासन पर कि वे जनता की मांगों पर विचार करेंगे और पुलिस दमनकारी नीति का सहारा नहीं लेगी, शहर के दरवाजे खोल दिए गए। इस अवसर पर भारत के राष्ट्रीय झंडे को पुलिस व सेना ने मिलकर सलामी दी और सभी नागरिकों ने राज्य प्रशासन अधिकारियों को सौंपा, परन्तु शीघ्र ही राज्य ने अपने आश्वासनों का उल्लंघन किया और दमनचक्र घुमाना शुरू किया। श्यामनारायण सक्सेना सहित अनेक कार्यकर्ता पुलिस की दमनकारी नीति के शिकार बने। पुलिस जुल्म के विरोध में श्यामनारायण ने भूख हड़ताल प्रारम्भ की। अंतत: महाराव के इस आश्वासन पर कि वे राज्य में उत्तरदायी शासन के लिए शीघ्र ही कदम उठाएंगे, सत्याग्रह आंदोलन स्थगित कर दिया गया।

जोधपुर

जोधपुर में उत्तरदायी शासन की स्थापना की मांग को लेकर प्रारम्भ होने वाला आंदोलन जयनारायण व्यास के नेतृत्व में १६४० में प्रारम्भ हुआ था। इसकी मुख्य विशेषता यह थी कि यह केवल शहर तक ही सीमित नहीं था अपितु ग्रामीण जनता ने भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान दिया। जोधपुर के गांवों में जागीरदारों के जुल्मों की कहानी अविस्मरणीय है। वास्तविकता यह थी कि एक किसान को सैंकड़ों तरह की लागबाग देनी पड़ती थी, जैसे कासलाग, लटाईलाग आदि। इस प्रकार एक सामान्य किसान के लिए सुबह से शाम तक कार्य करने के पश्चात् भी भरपेट भोजन करना मुश्किल हो गया था। मारवाड़ लोक परिषद् ने ग्रामीण जनता की इन कठिनाइयों की ओर राज्य सरकार का ध्यान कई बार आकर्षित किया, परन्तु सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। संक्षेप में जागीरदारों के अत्याचार बढ़ते गए और उन्हें सरकार का समर्थन मिलता रहा।

इन परिस्थितियों में मारवाड़ लोक परिषद् ने जयनारायण व्यास और उनके सहयोगी मथुरादासमाथुर(?), पुरुषोत्तमप्रसाद, किशोरीलाल मेहता, अचलेश्वरप्रसाद(?), भंवरलाल जैन, सी॰ आर॰ चोपड़ा(?) और गणेशलाल व्यास के नेतृत्व में आंदोलन प्रारम्भ किया। इन कार्यकर्ताओं को शीघ्र ही मारवाड़ आर्डीनेंस एक्ट १९३२ के अन्तर्गत २६ मार्च, १९४० को गिरफ्तार कर लिया गया। साथ ही जोधपुर राज्य में सभी स्थानों पर परिषद् और उसकी शाखाओं को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। राज्य सरकार ने आंदोलन को कुचलने की दृष्टि से समूचे राज्य में धारा १४४ लागू करके सार्वजनिक सभाओं पर पाबंदी लगा दी परन्तु इन सबके बावजूद आंदोलन को कुचला नहीं जा सका। अब आंदोलन का नेतृत्व मथुरादास माथुर ने संभाला। १ अप्रेल, १९४० को जब सत्याग्रहियों का जुलूस निकाला जा रहा था तो मौलाना रियाजुद्दीन, भाई परमानंद, हुकमराज मेहता, वृद्धिचंद जोशी को गिरफ्तार कर लिया गया। ३ अप्रेल, १९४० को जब मथुरादास माथुर लगभग १० ००० नागरिकों के जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे तब उन्हें भी गिरफ्तार करके एक वर्ष के लिए परबतसर में नजरबंद कर दिया गया। पुलिस द्वारा लाठी चार्ज प्रतिदिन की कहानी बन गई। यहाँ तक कि विद्यार्थी परिषद् के अध्यक्ष ताराप्रसाद को भी गिरफ्तार कर लिया गया; यद्यपि २६ अप्रेल, १९४० को विशेष न्यायालय ने उन्हें रिहा कर दिया। पुलिस जुल्म की जाच भी हर ओर से मांग की जाने लगी। जून, १९४० में देशी राज्य परिषद् के अध्यक्ष पं॰ जवाहरलाल नेहरू ने जोधपुर की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए द्वारकानाथ कचरू को जोधपुर भेजा। राज्य सरकार ने उनके साथ कोई सहयोग नहीं किया। कचरू ने अपने प्रतिवेदन में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि राज्य का राजनीतिक वातावरण दमघोटू था और एक टाइपराइटर तक का रजिस्ट्रेशन करवाना अनिवार्य था। अंतत जून, ४० में राज्य सरकार और मारवाड़ लोक परिषद् के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अतर्गत राज्य ने परिषद् को मान्यता प्रदान की और सभी गिरफ्तार राजनीतिक कैदियों को रिहा कर दिया गया।

९ फरवरी, १९४२ को मारवाड़ लोक परिषद् का खुला अधिवेशन लाडनू में सम्पन्न हुआ। सभापति पद से भाषण देते हुए रणछोड़दास गट्टानी ने सरकार से मांग की कि वह बेगार-प्रथा को समाप्त कर उत्तरदायी शासन की स्थापना करे। परिषद् ने २८ मार्च, १९४२ को उत्तरदायी शासन-दिवस मनाने [illegible] भी निश्चय किया। परन्तु चंडावल (मारवाड़) के ठिकानेदारों ने

लोक परिषद् को उत्तरदायी शासन दिवस मनाने की अनुमति नहीं दी और राज्य पुलिस की सहायता से नागरिकों पर लाठियां बरसाई गईं। राज्य सरकार ने सत्याग्रहियों की सहायता करने के स्थान पर १८ अप्रेल, १६४२ को एक माह के लिए धारा १४४ लगाकर सभी सार्वजनिक सभाओं पर पाबंदी लगा दी। इन परिस्थितियों में लोक परिषद् के सम्मुख इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था कि वह सत्याग्रह का सहारा ले। परिषद् ने निश्चय किया कि जयनारायण व्यास जो अभी हाल में ही जेल से आए थे, के नेतृत्व में सत्याग्रह आंदोलन आरम्भ किया जाए। आंदोलन आरम्भ करने से पूर्व जयनारायण व्यास ने जोधपुर महाराजा से भेंट करना चाहा परन्तु उनकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया गया। इसी बीच राज्य की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए "मारवाड़ में उत्तरदायी शासन" और "जोधपुर की स्थिति पर प्रकाश" नामक दो पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। इन प्रकाशन ने जोधपुर महाराजा को उत्तेजित कर दिया और उन्होंने जयनारायण व्यास को चेतावनी दी कि इसके गंभीर परिणाम होंगे। प्रत्युत्तर में २६ मई को जयनारायण व्यास और उनके साथियों ने राज्य की दमनकारी नीति के विरोध में जोधपुर म्युनोसिपल बोर्ड की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

जोधपुर में दमन-चक्र

इसके साथ ही २७ मई, १६४२ को जयनारायण व्यास को गिरफ्तार कर लिया गया और फिर तो गिरफ्तारियों का तांता ही लग गया। मथुरादास माथुर, अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, छगनलाल चौपासनीवाला, गणेशलाल व्यास और अभयमल जैन को भी शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया गया। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् ने स्थायी समिति के सदस्य कन्हैयालाल वैद्य को स्थिति का अध्ययन करने के लिए जोधपुर भेजा परन्तु राज्य सरकार ने उन्हें तुरन्त राज्य की सीमा से बाहर चले जाने का आदेश दिया और एक वर्ष के लिए उनके राज्य में प्रवेश पर रोक लगा दी। राज्य की इस दमन-नीति की जवाहरलाल नेहरू, हरिभाऊ उपाध्याय, हीरालाल शास्त्री, मास्टर भोलानाथ, गोकुल भाई भट्ट, मुकुटविहारीलाल भार्गव और सत्यदेव विद्यालंकार ने कटु आलोचना की।

बालमुकुंद बिस्सा की मृत्यु

इसी बीच ११ जून, १६४२ को बालमुकुंद बिस्सा सहित लोक परिषद्

के अनेक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ जेल में बहुत बुरा व्यवहार किया गया और दूसरे दिन मध्याह्न १।। बजे तक भोजन भी नहीं दिया गया, इस दुर्व्यवहार के विरोध में सत्याग्रहियों ने भूख हड़ताल प्रारम्भ कर दी। सत्याग्रहियों की मांग थी कि उन्हें उनकी गिरफ्तारी के कारण बताए जाए परन्तु राज्य सरकार न ४ दिन बाद यह सूचित किया कि वे अभियुक्तो से भी गए बीते हैं और उनके साथ वैसा ही (अभियुक्तो जैसा) व्यवहार होगा। १२ जून, १६४२ को जबरदस्त लू और भीषण गर्मी के कारण सत्याग्रहियो ने जेल अधिकारियो से अनुरोध किया कि उन्हें खुले मे सोने की अनुमति दी जाए परन्तु उनके इस आवेदन को ठुकरा दिया गया और जब सत्याग्रहियो ने बेरक म आने से इकार कर दिया तो जेल अधिकारियों ने कैदियो से उनकी पिटाई करवाई, तदुपरान्त पुलिस की सहायता स उन्हे गहरी नींद लेने के लिए बेरक मे फेंक दिया। इस घटना मे बालमुकन्द बीस्सा और रणछोड़दास गट्टाणी सहित अनेक व्यक्तियो के गम्भीर चोटें आईं। बालमुकन्द बिस्सा को इतनी चोट लगी कि वह बीमार पड गया परन्तु उसकी ओर किसी ने ध्यान नही दिया और जब १६ जून को उसे १०३ डिग्री बुखार हो गया तो अधिकारियो ने उसे अस्पताल भेजने का विचार किया। बालमुकन्द को उनके वृद्ध माता-पिता और उनकी पत्नी तथा बच्चो से मिलने की अनुमति नहीं दी गई। इस गम्भीर हालत मे जब बालमुकन्द बिस्सा को बेहोशी की हालत म विडम अस्पताल भेजा गया तो थोडी देर बाद ही उनकी मृत्यु हो गई। इस घटना ने समूचे शहर को उत्तेजित कर दिया। पुलिस ने शव यात्रा पर प्रतिबन्ध लगा दिया और भीड को तितर बितर करने के लिए लाठी चार्ज किया। महाराजा की इस दमनकारी नीति की समूचे शहर में आलोचना हुई। महात्मा गाधी ने भी आशा व्यक्त की कि महाराजा घटना से सबक लेंगे और राज्य मे शीघ्र ही उत्तरदायी शासन की स्थापना करेंगे। इस युग की महत्त्वपूर्ण घटना यह थी कि जोधपुर की राजनीति मे पहली बार स्त्रियों ने केसरिया साडी पहन कर शहर मे घटाघर के समीप सत्याग्रह किया। श्रीमती महिमादेवी किंकर के नेतृत्व म १७ जुलाई, १६४२ को प्रदर्शन भी किया गया। २६ जुलाई को समूचे राजस्थान मे 'मारवाड सत्याग्रह' दिवस मनाया गया और स्थान-स्थान पर सार्वजनिक सभाए आयोजित की गईं।

अब सत्याग्रह आन्दोलन जोधपुर के समीपस्थ जिले जैसे फलौदी, सोजत और नागौर म भी फैलने लगा तथा बडी सख्या में व्यक्तियो को

गिरफ्तार किया गया। इसी बीच ४ अगस्त, १६४२ को जयनारायण व्यास को ६ वर्ष ६ महीने, मथुरादास माथुर को २ वर्ष ६ महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। समूचे भारत में जोधपुर न्यायालय के इस निर्णय की कटु-आलोचना हुई। अन्त में मई १६४४ में वातावरण को शान्त करने की दृष्टि से राज्य सरकार ने जयनारायण व्यास और उनके सहयोगियों को रिहा किया। १६४५ में राज्य सरकार ने कुछ संवैधानिक सुधारों को लागू करने की घोषणा की। एक प्रतिनिधि सभा की भी स्थापना की गई जिसमें ६६ सदस्य होने थे, जिनमें से अधिकांश जनता द्वारा निर्वाचित किए जाने थे। इस प्रकार इन संवैधानिक सुधारों की घोषणा के साथ ही साथ राज्य का राजनैतिक वातावरण कुछ शान्त बना परन्तु जागीरदारों के जुल्म अभी भी बदस्तूर बने हुए थे, अतः अक्टूबर १६४६ में "मारवाड़ लोक परिषद्" ने जमींदारों के विरुद्ध आंदोलन प्रारम्भ किया। डीडवाना जिले के डाबरा नामक स्थान पर १६४७ में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया परन्तु जागीरदारों [redacted] सहयोग से राज्य पुलिस ने अनेक व्यक्तियों को गिरफ्तार किया जिनमें राधाकिशन, द्वारकादास पुरोहित, मथुरादास माथुर सम्मिलित थे। इन व्यक्तियों पर राज्य विरोधी कार्यवाही करने का आरोप लगाया गया परन्तु जब कुछ समय बाद जयनारायण व्यास के नेतृत्व में लोकप्रिय मंत्रि मण्डल की स्थापना हुई तो सत्याग्रह आंदोलन समाप्त हो गया और गिरफ्तार सत्याग्रहियों को रिहा करके उनके विरुद्ध चल रहे मुकदमे वापिस ले लिए गए।

जैसलमेर —

राजस्थान की देशी रियासतों में जैसलमेर को अण्डमान निकोबार के नाम से पुकारा जाता था। कारण यह था कि यह राजस्थान की सबसे पिछड़ी रियासत थी जहां पर राजनैतिक चेतना का आरम्भ काफी देर से हुआ। सागरमल गोपा और नारायणदास भाटिया पहले व्यक्ति थे जिन्होंने राज्य के तानाशाही शासन के विरुद्ध जन जागृति करने में योगदान दिया। जैसलमेर के इतिहास में पहली बार १६ नवम्बर, १६३० को जवाहर दिवस मनाया गया। सागरमल गोपा और सहयोगी इदन पुरोहित और रघुनाथ सिंह मेहता को शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया गया, यद्यपि प्रभावशाली व्यक्ति होने के कारण उन्हें ३६ घन्टे बाद ही रिहा कर दिया गया। तत्पश्चात् सागरमल गोपा नागपुर चले गए और वहीं से जैसलमेर के निरंकुश शासन के विरुद्ध

सेन लिखते हैं। १६३२ में रघुनाथसिंह मेहता ने महेश्वरी युवक मण्डल की स्थापना की जिससे कि जनता में राजनीतिक चेतना जागृत की जा सके परन्तु रघुनाथसिंह मेहता को शीघ्र ही गिरफ्तार करके २ वर्ष ६ माह के कारावास की सजा दी गई। राज्य की इस दमनकारी नीति ने समूचे राज्य में उत्तेजना पूर्ण वातावरण बना दिया। छः माह बाद रघुनाथसिंह मेहता को रिहा कर दिया गया और वे मद्रास में जाकर बस गए।

जैसलमेर में प्रजा परिषद् की स्थापना

इस समय जैसलमेर के लिए राजनीतिक चेतना का कार्य नागपुर से सागरमल गोपा मद्रास में रघुनाथसिंह मेहता और जैसलमेर में शिवशंकर गोपा तथा मिश्र म केशवदास व्यास और रामचन्द्र केवलिया कर रहे थे। राज्य की दमन-नीति के बावजूद १६३६ में शिवशंकर गोपा ने राज्य में प्रजा परिषद् की स्थापना कर दी। परन्तु इसका परिणाम उन्हें शीघ्र ही भुगतना पड़ा, राज्य ने उन्हें निष्कासित कर दिया और वे भी अपने भाई सागरमल गोपा के पास नागपुर चले गए।

सागरमल गोपा की गिरफ्तारी

मार्च १६४१ में सागरमल गोपा के पिता की मृत्यु हो गई अतः सागरमल गोपा ने ब्रिटिश रेजिडेन्ट से प्रार्थना की कि वह उन्हें राज्य में प्रवेश की अनुमति प्रदान करें। रेजिडेन्ट की इस सूचना पर कि उनके विरुद्ध में कोई मामला विचाराधीन नहीं है २२ मई १६४१ को सागरमल गोपा जैसलमेर पहुंचे परन्तु जब वे निवृत्त होने के लिए बाहर जा रहे थे तभी पुलिस सब इन्स-पेक्टर गुमानसिंह ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। सागरमल गोपा को कठोर यातनाएं दी गईं और बाद में उन पर राज्य-विरोधी भाषण देने का आरोप लगाकर ६ वर्ष के कारावास का दण्ड दे दिया गया। इस अवधि में भी जेल में सागरमल गोपा के साथ अकथनीय दुर्व्यवहार किया गया। सागरमल गोपा ने इस दुर्व्यवहार के प्रति जयनारायण व्यास और अखिल भारतीय देशी राज्यलोक परिषद् के उपाध्यक्ष शेख अब्दुल्ला को यथा स्थिति से अवगत कराया जिन्होंने राज्य सरकार से तत्काल हस्तक्षेप की मांग की। २ अप्रेल, १६४६ को सागरमल गोपा ने जिला जज के पास भी उन पर किए जा रहे पुलिस अत्या-चारों के विरुद्ध प्रार्थनापत्र भेजा परन्तु पुलिस सब इन्सपेक्टर गुमानसिंह ने रास्ते में ही उसे जब्त कर लिया और सागरमल गोपा को गंभीर परिणाम भुगतने

की चेतावनी दी। दूसरे ही दिन अर्थात् ३ अप्रेल, १९४६ को यह समाचार मिला कि सागरमल गोपा ने अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आत्महत्या करने का प्रयास किया है उन्हें शीघ्र ही अस्पताल ले जाया गया जहां ४ अप्रेल, १९४६ को उनकी मृत्यु हो गई। इस घटना ने समूचे भारत में तहलका मचा दिया। जवाहरलाल नेहरू और लोकनायक जयनारायण व्यास ने सरकार की दमनकारी नीति की कटु आलोचना की और सागरमल गोपा की मृत्यु के कारणों की जांच करने के लिए एक कमीशन को नियुक्त करने की मांग की। २७ अगस्त १९४६ को श्रीगोपालस्वरूप पाठक (वर्तमान में भारत के उप राष्ट्रपति) को एक सदस्यीय आयोग के रूप में नियुक्त किया गया जिन्होंने अपने प्रतिवेदन में कहा था कि सागरमल गोपा ने पुलिस अत्याचारों के डर से अथवा पुलिस द्वारा दी गई यातनाओं से परेशान होकर आत्महत्या की है।

प्रजामण्डल की गतिविधियां

इसी बीच १५ दिसम्बर १९४५ को मीठालाल व्यास ने सबप से बचने के लिए जोधपुर में जैसलमेर प्रजामण्डल की स्थापना कर ली थी। सागरमल गोपा के बलिदान ने प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं में एक नए साहस का संचार किया। इसीलिए २६ मई १९४६ को मीठालाल व्यास जयनारायण व्यास और उनके साथियों ने जैसलमेर की राज्य-सीमा में प्रवेश किया। २७ मई १९४६ को जयनारायण व्यास ने जैसलमेर भूमि पर भारत का राष्ट्रीय तिरंगा झंडा फहराया जिसका जनता ने इन्कलाब जिन्दाबाद और 'प्रजामण्डल जिन्दाबाद' के नारों से स्वागत किया।

राजस्थान में देशी रियासतों का विलीनीकरण

जून १९४७ में ब्रिटिश सरकार ने भारत को सत्ता सौंपने का निर्णय किया। तदनुसार १५ अगस्त १९४७ को भारत ने अपने त्याग और बलिदान का पुरस्कार स्वाधीनता के रूप में प्राप्त किया। स्वतन्त्र भारत की सरकार के सम्मुख सबसे बड़ी गंभीर समस्या देशी राज्यों के एकीकरण की थी। भारत के तत्कालीन उप प्रधानमन्त्री तथा गृहमन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा भारत सरकार के गृह सचिव श्री वी पी मेनन के अथक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भारत के अधिकांश देशी रियासतों ने भारतीय संघ में सम्मिलित होने का निर्णय किया। जहां तक राजपूताना के राज्यों के एकीकरण का सबंध है, आधुनिक राजस्थान का निर्माण ५ चरणों में पूरा हुआ।

प्रथम चरण में अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली को मिलाकर २० फरवरी १६४८ को मत्स्य यूनियन का निर्माण किया गया। द्वितीय चरण में बांसवाड़ा, बूंदी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़ शाहपुरा और टोंक को मिलाकर २५ मार्च, १६४८ को प्रथम राजस्थान यूनियन का निर्माण किया गया। तृतीय चरण में १ अप्रेल, १६४८ को प्रथम राजस्थान यूनियन में उदयपुर सम्मिलित हुआ। चौथे चरण में बृहत् राजस्थान का निर्माण हुआ। जिसमे जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर की रियासतें सम्मिलित हुई। पांचवे और अंतिम चरण मे ३० मार्च, १६४६ को मत्स्य यूनियन का विलय बृहत् राजस्थान मे होकर सम्पूर्ण राजस्थान का निर्माण हुआ।

इस प्रकार विभिन्न राज्यों में प्रजामण्डल, प्रजा परिषद् और किसान सभा इत्यादि की स्थापना से नागरिकों मे राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना उत्पन्न की। महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू व अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों के त्याग और बलिदान राजस्थान की जनता के लिए प्रेरणा स्रोत बने और इस प्रकार देशी राज्यों की जनता का एक लम्बा संघर्ष अन्तत सफलता के साथ समाप्त हुआ।

८

उपसंहार

१२ वीं और १३ वीं शताब्दी में मध्ययुगीन—राजस्थान मे मुस्लिम शासन का सूत्रपात हुआ, तत्पश्चात् मुगलो का शासन स्थापित हुआ था परन्तु १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के बाद भारत मे राजनीतिक शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। मराठा और पिण्डारियो ने जी भरकर राजस्थान को लूटा था। राजे और महाराजे असहाय दिखाई देते थे। इन परिस्थितियो में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने राजनीतिक शून्यता की स्थिति को भरने के लिए हस्तक्षेप की नीति अपनाई। १८०३ से १८१८ तक लगभग राजस्थान के सभी राज्यों ने ब्रिटेन के साथ संधिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए थे और इस तरह अब वे अपने को सुरक्षित अनुभव करने लगे थे।

परन्तु शीघ्र ही रीति रिवाज और परम्पराओ को लेकर राजाओं और उनके जागीरदारों के मध्य संघर्ष उत्पन्न होने लगा जिसके परिणामस्वरूप राजा की शक्ति को चुनौती दी जाने लगी। इसी बीच १८५७ का विप्लव प्रारंभ हुआ। राजस्थान में यह विद्रोह सैनिक छावनियों-नसीराबाद नीमच और देवली तक सीमित था। यद्यपि भागते हुए विप्लवकारियों ने जयपुर, जोधपुर, टौंक, मारवाड़ और मेवाड़ की प्रादेशिक सीमाओं में प्रवेश किया और वहां के राजाओं पर जनता से सहयोग लेने की असफल चेष्टा की। परन्तु अधिकांश जनता उदासीन रही। आवा के असन्तुष्ट ठाकुर ने अवश्य स्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। कोठारिया और सलुम्बर के जागीरदारों का दृष्टिकोण भी सहानुभूतिपूर्ण था परन्तु ब्रिटिश दमन-चक्र के सम्मुख विप्लवकारियों को

समर्पण करना पड़ा। १८६१ से १८८५ तक देशी राज्यों में भी ब्रिटिश भारत के सुधार लागू किए गए जिसके परिणामस्वरूप देशी राज्यों की सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक स्थिति में आशातीत प्रगति हुई। १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनेक धर्म सुधार-आन्दोलन हुए जिनमें आर्य समाज ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा स्वदेशी स्वधर्म, स्वभाषा और स्वराज्य की प्राप्ति पर सर्वाधिक बल दिया गया जिसने राजस्थान में नई राजनीतिक चेतना को जन्म दिया। इसी समय समाचार-पत्रों और विभिन्न साहित्य के प्रकाशनों ने जनता में राष्ट्रवाद की भावना बलवती की।

१८८५ में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना के रूप में भारत को राष्ट्रवाद का एक नया रास्ता प्राप्त हुआ। १८६६-६७ में लेफ्टीनेंट रेन्ड और आयर्स्ट की हत्या के साथ ही साथ भारतीय राजनीति में उग्र राष्ट्रवाद का प्रादुर्भाव हुआ, जो १९१६ तक भारतीय राजनीति में छाया रहा। १९०५ के बंगाल-विभाजन और इस युग की अनेक आतंकवादी घटनाओं के प्रभाव से राजस्थान भी अछूता न रह सका। श्यामजी कृष्ण वर्मा, अर्जुनलाल सेठी, केसरीसिंह बारेठ, राव गोपालसिंह खारवा और अन्य क्रांतिकारियों ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए तन, मन, धन से योग दिया। इसी युग में बिजौलिया, बेगू, बूंदी और सिरोही में किसान आन्दोलन भड़क उठा। जागीरदारों के नृशंस अत्याचार, बेगार और लागबाग के विरुद्ध राजस्थान के किसानों ने विजयसिंह 'पथिक' के नेतृत्व में सफलतापूर्वक टक्कर ली।

इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना यह भी थी कि राजस्थान के भीलों ने ब्रिटेन के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया। जनगणना और भू-राजस्व सम्बन्धी सुधारों ने भीलों की प्राचीन परम्पराओं का उलंघन किया था अतः वे भी ब्रिटिश विरोधी भावनाओं से ओतप्रोत थे। यही कारण था कि १८८१-८२ में और बाद में १९२४ में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भीलों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन किया। निःसंदेह राज्य की दमनकारी नीति व मोतीलाल तेजावत की गिरफ्तारी के परिणामस्वरूप भील आन्दोलन कुचल दिया गया परन्तु इस आन्दोलन ने भीलों के हृदय में जो स्वतन्त्रता की ज्योति जगाई और उन्हें अधिकार व कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया वह कभी नहीं मिटाया जा सका।

१९१४ में प्रथम महायुद्ध चालू हुआ। राजा व महाराजाओं ने अपने

निरंकुश शासन को बनाए रखने की दृष्टि से ब्रिटेन की हर संभव सहायता की और ब्रिटेन की विजय को अपनी विजय समझी। १९१९ के पश्चात् भारत की संवैधानिक समस्या का समाधान निकालने के लिए मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार लागू किया गया परन्तु जब इसका कोई सफल परिणाम नहीं निकला तो १९२१–२२ में महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश किया। राजस्थान ने भी अपना भरसक योगदान दिया। महात्मा गांधी के आन्दोलन से प्रभावित होकर बूंदी, बिजौलिया, बेगू, भरतपुर, सिरोही और अलवर में अनेक आन्दोलन हुए तथा अनेक स्थानीय संस्थाओं का जन्म हुआ जिनमें मारवाड़ हितकारिणी सभा, राजस्थान सेवक संघ और देशी राज्य परिषद् प्रमुख थे। इन संस्थाओं ने नागरिकों के राजनीतिक अधिकारों के लिए अनेक आन्दोलन किए।

१९३० में महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन ने राजस्थान में भी तहलका मचा दिया। अजमेर, जोधपुर, जयपुर बीकानेर उदयपुर और भरतपुर राज्य के नागरिकों ने उत्तरदायी शासन की पुरजोर मांग की। परिणामस्वरूप राजस्थान के विभिन्न राज्यों में प्रजामण्डल की स्थापना हुई। प्रत्युत्तर में राज्य सरकारों ने दमनचक्र का सहारा लिया परन्तु अब जनता में साहस जागृत हो चुका था। यहां तक कि बीकानेर महाराजा के विरुद्ध खुले पत्र वितरित किए गए। भरतपुर में यदि जाट महासभा का आन्दोलन शुरू हुआ तो मेवाड़ में बिजौलिया आन्दोलन और जयपुर सीकर मतभेदों ने वातावरण को अत्यन्त गर्म बना दिया। सभी राज्य सरकारों ने प्रजामण्डलों को अवैध घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप आन्दोलन और तीव्र हुआ। इस समय राजस्थान में २ दल कार्य कर रहे थे जिनमें से एक का नेतृत्व विजयसिंह पथिक, अर्जुनलाल सेठी और बाबा नृसिंह-दास कर रहे थे तो दूसरा दल जमनालाल बजाज हरिभाऊ उपाध्याय और हीरालाल शास्त्री के नेतृत्व में कार्यरत था परन्तु दुर्भाग्य से इनके आपसी मत-भेदों के परिणामस्वरूप ये दोनों दल मिलकर कार्य नहीं कर सके। कुछ समय पश्चात् जब इन दोनों के आपसी मतभेद दूर हुए तो जयनारायण व्यास, माणिक्यलाल वर्मा जमनालाल बजाज हीरालाल शास्त्री, मास्टर भोलानाथ, जुगलकिशोर चतुर्वेदी, स्वामी गोपालदास और सूरजमल सर्राफ इत्यादि ने मिलकर राजस्थान के सभी राज्यों में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए चलाए गए आन्दोलन का नेतृत्व किया। १९३१–३२ में जब उत्तर भारत में

एक बार आतंक की लहर पुनः उभरी तो राजस्थान भी इसकी चपेट में आया। इस बार पं० ज्वालाप्रसाद शर्मा के नेतृत्व में अजमेर आतंकवादी गतिविधियों का केन्द्र बना। बाद में ज्वालाप्रसाद की गिरफ्तारी के पश्चात् यह आंदोलन शिथिल पड़ गया।

१६३६ में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ। इस बार भी देशी राजाओं ने तन-मन धन से ब्रिटेन की सहायता की परन्तु १६४० में जयनारायण व्यास और मथुरादास माथुर के नेतृत्व में जब मारवाड़ लोक परिषद् ने उत्तरदायी शासन की माग को लेकर जोधपुर में आन्दोलन आरम्भ किया तो राज्य के अन्य भागों में भी उसकी गंभीर प्रतिक्रिया हुई अर्थात् जयपुर, उदयपुर, भरतपुर, सिरोही, कोटा और डूंगरपुर राज्यों ने भी उत्तरदायी शासन की स्थापना की माग ने जोर पकड़ा। जयपुर में जमनालाल बजाज जोधपुर में जयनारायण व्यास और उदयपुर में माणिक्यलाल वर्मा की गिरफ्तारी ने समूचे भारत का ध्यान आकर्षित किया और राज्यों में व्याप्त निरंकुश शासन की सभी जगह भर्त्सना हुई। यही कारण है कि विभिन्न राज्यों में संवैधानिक सुधार लागू किए गए। इस संदर्भ में जैसलमेर में सागरमल गोपा के योगदान को नहीं भुलाया जा सकता। जैसलमेर में राजस्थान की वह पिछड़ी रियासत थी जिसे जवाहरलाल नेहरू ने विश्व का आठवा आश्चर्य कहा था, सागरमल गोपा के बलिदान ने इस पिछड़ी रियासत की जनता में भी राजनैतिक चेतना का संचार किया।

८ अगस्त, १६४२ को 'भारत छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ हुआ। राजस्थान ने भी कन्धे से कन्धा मिलाकर अपना योगदान दिया। राज्य सरकारों के द्वारा आन्दोलनों को कुचलने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किए गए परन्तु अन्तत: जनता की जीत हुई। १५ अगस्त, १६४७ को जब उषा की लाली ने भारत के भाल पर स्वाधीनता का तिलक किया तो राजस्थान की रियासतों ने भी भारतीय संघ के साथ ही अपना भावी जीवन सम्मिलित कर दिया। इस प्रकार एक लम्बे संघर्ष, त्याग और बलिदान के पश्चात् राजस्थान की जन-आकांक्षाओं की पूर्ति हुई और भारत के अन्य राज्यों के समान ही राजस्थान में भी लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल पदारूढ़ हुआ।